15465

॥ श्री सद्गुरुकृपा प्रकाश ग्रन्थान्तर ॥

सत्य सिद्धान्त रहस्य प्रकाश

अर्थात्

15465

आत्म अनातम ज्ञान

जिसको

जय सियराम जय जय सियराम नाम ध्वनि प्रचारक

श्री वैष्णव धर्म्मावलम्बी परमहंस श्री १०८

स्वामी श्रीसियाललशरणजी महाराज

उपनाम श्री प्रेमलताजू ने निर्माण किया

उन्हींको

श्री सियारघुनाथशरण ने लिखा

संकटमोचन श्री हनूमानजी के

बगीचा में बनारस

आ ८५

अनन्तश्रीसद्गुरवे नमः। श्रीहनुमते नमः

सा. स्वा. श्री वासुदेवाचार्य की स्मृति मन्दिर
श्री बोधायन पुस्तकालय
संख्या........................
दार्शनिक आश्रम, अयोध्या

भूमिका

तथा नम्र निवेदन

सन्त, सज्जन, भक्त-वृन्द तथा शास्त्रीय दृष्टिकोण वाले भावुक उपासकों से प्रार्थना है कि सत्यसिद्धान्त-रहस्य-प्रकाश तथा आत्म-अनात्म-ज्ञान-रहस्य नामक इस ग्रंथ के द्वारा अनन्त श्री वैष्णव धर्मावलंबी परमहंस श्री १०८ स्वामी श्री सियालाल शरणजी महाराज उपनाम प्रेमलताजी ने भगवद्भक्त भावुक उपासकों के हितार्थ आत्मा और परमात्मा अर्थात् ईश्वर और जीव का सन्बन्ध शास्त्रीय दृष्टिकोण से वर्णन करके जन्म-जन्मान्तरों से भूले हुए जीवों को भगवत सन्मुख प्रात होने का मार्ग बतलाया है। जिस मार्ग पर चल कर आप अपने प्रियतम प्यारे प्रभु को प्राप्त करके परमानन्द-धाम श्रीसाकेतलोक को पधारे हैं—वही मार्ग आपने इस ग्रन्थमें भी दिखाया है। यद्यपि श्रीगुरुदेव जू की वाणी दोहाबद्ध करके अत्यन्त सरलतापूर्वक लिखी गई है तथापि मुझ जैसे मूर्ख, विषयी तथा प्रभु-भक्ति विमुखों को इसका यथार्थतत्त्व समझने में अत्यंत कठिनता होगी, वे विद्वान भावुक उपासकों से सतसंग किये बिना नहीं समझ

15565
अयोध्या
श्री मणिराम दास छावनी सेवा ट्रस्ट

सकेंगे, इसलिए प्रार्थना है कि तर्क-वितर्क त्याग कर इस रहस्य के ज्ञाता रसिक विद्वानों के द्वारा इसे समझकर आत्म-कल्याण करें, बस इतनी ही प्रार्थना है।

अब इस ग्रंथ के प्रकाशन में जिन परमार्थी सज्जनों ने सहायता दी है उनके नाम इसी ग्रन्थ-रत्न में अंकित कर रहा हूँ।

मेरे प्रिय भ्राता, श्रीसद्‌गुरु-कृपापात्र श्री सालिग्राम-शरण नैनी इलाहाबाद निवासी तथा श्री रामबालकशरण, श्री रामगंगाशरण, श्रीरामराजेन्द्रशरण, श्री सियारामशरण श्रीपवननन्दनशरण और श्री काशी-निवासी श्री नाथशरण की धर्मपत्नी श्रीमती श्री ललितकिशोरी सहचरी देवी ने श्रद्धापूर्वक शुल्क अर्पण करके इस ग्रंथ को शीघ्राति शीघ्र प्रकाशित करने की प्रार्थना की, अस्तु इन सब की आत्मा को श्री गुरुदेव जू महाराज श्री साकेत धाम में अपने समीप कुञ्जों में निवास देकर अष्टयाम की सेवा में सम्मिलित करके नित्यानन्द का भागी बनावें—

प्रार्थी—

श्री सद्‌गुरु-कृपापात्र

श्री सियारघुनाथशरण उपनाम प्रेममञ्जरी

संकटमोचन हनुमान मंदिर, पो० लंका, बनारस।

॥ अथ श्रीसीतामढ़ी धामाष्टक ॥

॥ छन्द संजु ॥

जगत जननि सिय जन्म भूमि श्रुति सीतामढ़ी सु गाई है ।
अरु सुलक्षणा पुरी नाम पुनि दूसर अति सुखदाई है ॥
सप्तपुरी अमरावति तेहि कर समता योग न पाई है ।
सकल सिद्धि प्रद सबहिं भूमितल राजति परम सुहाई है ॥१॥
वन्दनीय सुर सिद्ध सुहावन महल मनोहर राजत हैं ।
पुरी निकट पश्चिम दिशि पावन निशि दिन नौवत बाजत हैं ॥
श्री सियराम सहित तहँ भ्राजत दाहिन लखन विराजत हैं ।
दरशक आवत जात हजारनि जयति जयति जय गाजत हैं ॥२॥
उत्सव कथा कीर्तन नित नव होत लखत जन बड़ भागी ।
देश देश के गायक गुणि जन ध्यावत आवत अनुरागी ॥
शिव विरञ्चि सुर सिद्ध साधु मुनिकरत कष्टबहु जेहि लागी ।
निवसतिसोइ निज जन्मभूमि सिय त्रिभुवन जेहि कीरतिजागी॥३॥
दक्षिण दिशि श्रीमहल निकट अति कुण्ड उर्विजा निमित है ।
दरस परस मज्जन आदिक करि होत सुनिर्मल मन चित है ॥
प्रगटभईसिय स्वामिनि तेहि महँ करन अखिल लोकनिहित है ।
गावत वेद पुराण जासु गुण नेति नेति कहि कहि नित है ॥४॥
यग्यथली श्री जनकराय की जन्म भूमि पुनि सियकेरी ।
बसत बहुरि पुण्ड्रीक आदि मुनि भजनानँद चहुँदिशि घेरी ॥
अमराई बन बाग विमल थल थकत मुनिन मन चितहेरी ।
विहरति सिय पियसंग सदासुखऋधिसिधि निधिजिन्हिकरचेरी॥५॥
चहल पहल नित नवल पुरी बिच बसत सुकर्मी नर नारी ।
निज निजधर्म निरत चहुँ बरणी मनबच क्रम आश्रम चारी ॥
का हिन्दू का तुरुक काज कोउ आरम्भें जो लघु भारी ।
भाखहिं जय श्री जानकि जी की बात बात में मुदकारी ॥६॥
पुरी पूर्व दिशि गङ्ग लक्ष्मणा बहति सदा कलि मल हारी ।

15565
अयोध्या

श्री सद्गुरुवे नमः। श्री हनुमते नमः

सत्य सिद्धान्त रहस्य प्रकाश

अर्थात्

आत्म अनात्म ज्ञान

—*—

दोहा

श्री सियराम सु नाम रटि, श्री गुरु हनुमत ध्याय।
लिखौं सत्य सिद्धान्त जेहि, पढ़ि सुनि भर्म नशाय॥ १॥
सार बात नवनीत सम, मथि श्रुति शास्त्र पुराण।
काढ़ेउ रसिकन लिखहुँ सोई, आत्म अनातम ज्ञान॥ २॥
जीवातम जड़ संग करि, भूली निज पर रूप।
प्रथम प्रमाण समेत सोई, लिखौं प्रसङ्ग अनूप॥ ३॥
समुझहिं सन्त सबोध जन, वरणौं जो यहि माँहिं।
मुक्तामणि हंसहिं चुगें, बगुला वायस नाँहिं॥ ४॥

प्रथम प्रकरण

पुरुष जगत पति रामहैं, जड़ चेतन जिउ नारि।
रमत सदा सो सबनि सँग, विविध स्वरूप सुधारि॥ १॥

अपर नाम धारी पुरुष, करनी अवलनि केरि ।
भूले आतम रूप निज, चिन्ह बाहिरी हेरि ॥ २ ॥
अवगुण वशु[×] जो तियनि के, सो तिन्हि में भरिपूर ।
दरशत देखहिं ध्यान दै, जो वे निज निज ऊर ॥ ३ ॥
साहस-अनृत-चपलता, माया भय अविवेक ।
निर्दयता अरु अशुचिता, पुनि कामादि अनेक ॥ ४ ॥
पराधीन जो रहत नित, पुरत न मनके काम ।
करतब हीन बखानहीं, पुरुष पुरुष यह नाम ॥ ५ ॥
सत्य पुरुष श्रीराम में, लच्छण पुरुषनि केर ।
भरे अमित को कहि सके, नेति नेति श्रुति टेर ॥ ६ ॥
शरणपाल सर्वज्ञ शुचि, सत्य सु ब्रत सु उदार ।
अतुलित करुणा कोष बल, ज्ञान विवेक विचार ॥ ७ ॥
धीर वीर गम्भीर अति, सरल समर्थ स्वतंत्र ।
ब्रह्मादिक सुर सिद्ध शिव, पूज्य जपत जेहि मंत्र ॥ ८ ॥
देव दनुज नर नाग मुनि, सकल चराचर जीव ।
नारि रूप सब बदत बुध, राम सबन के पीव ॥ ९ ॥
सब कोउ भाषत रामकी, माया यह संसार ।
तेहिकर मालिक राम इक, पति-स्वामी-भरतार ॥१०॥
सबहिं रमावत आप सँग, स्वयम् रमत सब साथ ।
तेहि लगि भाषत राम इन्हि, बुध रघुपति रघुनाथ ॥११॥

× ८

भोग रूप संसार यह, भोक्ता पुरुष पुरान ।
बहु विधि सब कर लेत रस, धरि बहु रूप सुजान ॥१२॥
देखि सूँघि स्पर्श करि, पहिरि चाखि सुनि बोलि ।
रमि रमाय भोगत सबहिं, यहि बिधि प्रभु श्रुति मोलि ॥१३॥
रसो वैसः श्रुति कहत जेहि, सब कर रस सो लेत ।
रसिक भक्त आतमनि सँग, विहरि अधिक सुखदेत ॥१४॥
बिमुखी करुये कुकर्मी, रूखे ज्ञानी जीव ।
तिन्हि दिशि लखत न भूलिहूँ, प्रेमलता के पीव ॥१५॥
रसिक शिरोमणि रस निधि, रस ज्ञाता रसरूप ।
रसिकन सँग विलसत सरस, रसभोक्ता सु अनूप ॥१६॥
पुरुष ज्ञान मद मान में, जो जन चकनाचूर ।
ते पर पदहू पाय पुनि, गिरत प्रभू ते दूर ॥१७॥
शक्ति भाव ते भक्ति करि, तेहि द्वारा रटि नाम ।
लहहिं प्रभुहि जीवातमा, भाषत अस श्रुति साम ॥१८॥
भक्ति बिना प्रभु मिलत नहिं, भक्ति न विनु तिय भाव ।
तेहि लगि प्रभु जेहि विधि मिलैं, सुजन सो करत उपाव ॥१९॥
भक्ति रूप सिय तासु यह, शक्ति चराचर जीव ।
तेहि लगि करति न लाज केहु, सेवत आपन पीव ॥२०॥
मुनिजन ससुर पितादि के, सन्मुख निज पति साथ ।
विलसति बैठति लाज तजि, अंसनि डारि सु हाथ ॥२१॥
लीलाहित सियकी सखीं, धारेउ विपुल सरूप ।
सासु-ससुर-गुरु मातु पितु, जन भ्रातादि अनूप ॥२२॥

जनकादिक ज्ञानी महा, निज पति रामहिं जानि ।
पुत्रिन सह निज आतमा, अरपि दीन सुख मानि ॥२३॥
तिमि श्रीदशरथ अरपेउ, आतम निरखि वियोग ।
यह प्रसंग अति गूढ़ तर, वेगि न जानहिं लोग ॥२४॥
ज्ञान योग तप निष्ट मुनि, बन महँ रामहिं देखि ।
पति पहिचानि सु भाव तिय, प्रगटेउ उरनि विशेखि ॥२५॥
पुरुष भाव अज्ञान अति, तप बिनु नाश न होय ।
अछत ताहि सखि रूप निज, लखि न सकहिं जन कोय ॥२६॥
लीलाहित इत आतमा, आवै नर तनु धारि ।
बनें सत्य सोइ रूप निज, प्रेरक प्रभुहिं विसारि ॥२७॥
श्रुति पुराण आचार्य्य सब, आतम ज्ञानी जौन ।
भाषत आत्म सरुप तिय, मानत अज्ञ न तौन ॥२८॥
बुद्धि विषय सुख में सनी, अमल कीन मद पाँच ।
हम हमता रुज ग्रसेउ उर, समुझत झूठ न साँच ॥२९॥
जड़ नरत्व बहिरंग जो, मित काली अभिमान ।
फुर मानेउ सोइ आत्म निज, असली रूप भुलान ॥३०॥
सार सीख जो सूत्र सम, जेहि महँ आतम ज्ञान ।
भाषत श्रुति तेहि गहत नहिं, पढ़ि पुरान बउरान ॥३१॥
दुलहिनि रघु जीवातमा, रघुबर दुलहा राम ।
पढ़त सुनत सब ग्रथ पै, गहत न अर्थ ललाम ॥३२॥
शब्दनि कहँ घोखत रहत, अर्थ आनके आन ।
करि करि झगरत परस्पर, बड़े बड़े विद्वान ॥३३॥

पढ़ि पढ़ि वितयेउ जन्म सब, भयेउ न आतम ज्ञान ।
अहं बुद्धि बिनशी नहीं, जड़ नरत्व अभिमान ॥३४॥
आपहुँ कहँ चीन्हेंउ नहीं, प्रभु तो लाखनि कोश ।
विद्या मद पी जगतके, कथन लगेउ गुण दोष ॥३५॥
बिये पास आचार्य्य कोउ, कोउ सब विद्या पास ।
फैल भये प्रभु भजन में, बने खास जग दास ॥३६॥
माया हित नाचत फिरैं, पुरुष प्रवीन कहाय ।
बिना मिले अति विकल उर, होत नरत्व नशाय ॥३७॥
भाइहु हृदय विचारहू, ये पुरुषनि के काम ।
पराधीन दुख सहहिं अति, अवलनि इव वशुयाम ॥३८॥
अभय अजित स्वाधीन शुचि, उर न होय कुच दोय ।
धीर वीर गंभीर अति, पुरुष कहावत सोय ॥३९॥
पुरुषन के लच्छण अमित, सब श्रीरामहिं माँहिं ।
मिलत यथारथ वेद वद, इन्ह पुरुषन में नाँहिं ॥४०॥
लच्छण जो श्रीराम में, पुरुषनि के दरशाँहिं ।
सो यथार्थ पैयत नहीं, अवतारनि हूँ माँहिं ॥४१॥
अवतारी भौमादि अरु, कृष्णादिक अवतार ॥
सबके स्वामीराम जो, पुरुष प्रसिद्ध उदार ॥४२॥
डरपत तिनते सुर असुर, अवतारी अवतार ।
तदाधीन नाँचत सकल, सो स्वतंत्र सब पार ॥४३॥
पुरुष प्रसिद्ध प्रकाश निधि, प्रगट परावर नाथ ।
रघुकुल मणि निज स्वामि कहि, नावहिं जेहि शिवमाथ ॥४४॥

बड़े बड़े जिन्हि जानि निज, स्वामी पति गति दाय।
आत्म समर्पण करि चरण, सेवहिं भाव दृढ़ाय ॥४५॥
भरत लखन हनुमान शिव, रिपुहनादि अवतार।
धरि धरि द्वै द्वै रूप सब, सेवत जेहि सबिचार ॥४६॥
पुरुष भाव वहिरंग धरि, करत बाहिरी काम।
अन्तरंग सखि भाव ते, सेवहिं श्री सियराम ॥४७॥
कर्म्म ज्ञान पढ़ि बढ़ि गये, जड़ संसारी जीव।
अहं पुरुष ब्रह्मास्मी, बकन लगे तजि पीव ॥४८॥
पढ़त न सुनत उपासना, जेहि बिनु नशत न खेद।
निज पर विमल सरूप कर, कर्मी लहहिं न भेद ॥४९॥
कर्म ज्ञान पुलिंग दोउ, जीवन देत भुलाय।
उपासना निज रूप करि, प्रभु कहँ देइ मिलाय ॥५०॥
कर्म ज्ञान पुरुषत्व कर, राखत उर अभिमान।
तेहि लगि प्रभु कहँ प्रियन ये, भक्ति समान सुजान ॥५१॥
भक्तिवन्त अति नीचहूँ, कोउ प्राणी किन होय।
प्रभु कहँ प्राण समान प्रिय, प्रगट बात नहिं गोय ॥५२॥
भगति भगत भगवन्त तिहुँ, एक लखावत संत।
जो नरत्व अभिमान तजि, भजत जानकी कंत ॥५३॥
कर्म ज्ञान दोउ काण्ड तजि, जो उपासना काण्ड।
गहत लहत सोइ प्रभुहिं जन, व्यापक जो ब्रह्माण्ड ॥५४॥
भगती अपर उपासना, एकइ नाम सु दोय।
परम पुरुष श्रीराम कहँ, यहि सम प्रिय नहिं कोय ॥५५॥

कर्म ज्ञान साधन कठिन, भगति सुगम निरुपाय।
तजि नरत्व तेहि सेइ जन, पावहिं पति रघुराय ॥५६॥
कर्म ज्ञानकी करत जो, जन उपासना कोय।
जड़ नरत्व विनशत नहीं, प्रभु सन भेट न होय ॥५७॥
जड़ नरत्व अभिमान सह, करै सुकर्म अनेक।
भक्ति बिना रीझत नहीं, प्रभु समुझहु तजि टेक ॥५८॥
ज्ञानी करि करि कष्ट कोउ, धरत सु प्रभु कहँ आप।
भक्तनि सोइ पकरे रहत, शिशुनि यथा माँ बाप ॥५९॥
ज्ञानी लखि अद्भुत चरित, प्रभु के गिरत भँवाय।
करत सम्हार न शीघ्र सो, तिन्हि सम अधिक सहाय ॥६०॥
आत्म समर्पी भक्त जो, गत नरत्व अभिमान।
तिन्हिकर कर निज पकरि प्रभु, रखहिं प्राण समान ॥६१॥
करें कवनहूँ चरित प्रभु, अद्भुत अलख अनूप।
आत्म समर्पी गिरत नहिं, भये स्वामि अनुरूप ॥६२॥
महारानि अहलादिनी, भक्ति शक्ति शिरमौर।
तिन्हि के बश श्रीराम नित, रहत न जानहिं बौर ॥६३॥
भक्तिहिं की जीवातमा, शक्ति करै जग काम।
धरि चौराशी लाख तनु, रिझवति प्रीतम राम ॥६४॥
विद्या अरु जीवातमा, चेतन माया नाम।
येहि कहँ दीन सहायक, जड़ माया गुण धाम ॥६५॥
जड़ माया की देह में, बैठि रचै जग खेल।
चेतन यह जीवातमा, जिमि सिय आज्ञा देल ॥६६॥

अह्लादिनि सिय भक्ति की, आतम आज्ञाकार।
काम करै जड़ संग पै, सिय इच्छा अनुसार ॥६७॥
जड़ माया सँग काल बहु, बीते खेलत खेल।
निज सह सिय आयसु विसरि, तेहि सँग कीन्ह सुमेल ॥६८॥
चेतन शक्ति सरूप जो, जड़ सँग करि असनेह।
भूली आतम रूप निज, बनी जाति घर देह ॥६९॥
जो तन धारै सोइ बनै, भयेउ बाहरी ज्ञान।
भीतर की चैतन्यता, गई गहेउ मद मान ॥७०॥
असली शक्ति सरूप जो, सिया अंस गुण खानि।
विसरि गहेउ जड़ जाति कुल, देह बुद्धि उर आनि ॥७१॥
काशी में एक नृप बन्यो, बाशुदेव हठ ठानि।
मारेउ तेहि प्रभु कोप करि, मिथ्याबादी जानि ॥७२॥
बराबरी लागी करन, तिमि यह आतम भूलि।
अहं पुरुष ब्रहमास्मी, बकि बकि भई प्रतिकूलि ॥७३॥
परानुरक्ती ईश में, होय न बिनु तिय भाव।
जेहि महँ रहत न रञ्चहूँ, पतिसन पटल दुराव ॥७४॥
विषय बुद्धि यहि महँ नहीं, सेवा भाव प्रधान।
दम्पति सुख में लहत सुख, आतम परम सुजान ॥७५॥
भक्ति सच्चिदानन्द की, सेवा बिनु तिय रूप।
मिलति न कवनेउँ भाव में, साँगोपाँग अनूप ॥७६॥
प्रभु सेवा में धरत जे, विषय बुद्धि जड़ जीव।
परे अविद्या फन्द में, बिमुखी पतित अतीव ॥७७॥

कामादिक अवगुन अमित, नशत जपत जेहि नाम ।
तिन्हि की सेवा में कहाँ, विषय बुद्धि दुख धाम ॥७८॥
विषय निरत जड़ जीव अति, मलिन बुद्धि अज्ञान ।
भक्तनि श्री भगवानहीं, जानत आपु समान ॥७९॥
भगवानहुँ की भगति में, विषई बिमुख बिमूढ़ ।
विषय निरूपत मन्दमति, पाप पन्थ आरूढ़ ॥८०॥
जड़ नरत्व अभिमान उर, आवतही बउरान ।
तिय सरूप विसराय निज, बकति आनकी आन ॥८१॥
रही सचेतन आतमा, प्रभुकी सेवा योग ।
सोइ जड़माया संगते, ग्रसी विमुखता रोग ॥८२॥
आतम ज्ञाता लखहु सब, जड़ माया कर जोर ।
चेतन शक्तिहिं जड़करी, खैंचि आपनी ओर ॥८३॥
सनमुख ते भइ विमुख सो, लखि जड़माया रूप ।
देह बुद्धि उर धारि निज, परी अविद्या कूप ॥८४॥
भजति रही जेहि ब्रह्म कहँ, पतनी भाव समेत ।
निंदति तेहि अब धारि उर, पुरुष कुभाव अचेत ॥८५॥
तजि एकत्व नानात्व में, परी अविद्या संग ।
जरति सदा तिहुँ ज्वरनि जिमि, दीपक माँहिं पतंग ॥८६॥
काम क्रोध मद लोभ छल, कपट दम्भ पाखंड ।
अवगुन घेरें रहत बहु, तन धन जाति घमंड ॥८७॥
उदय होय कहुँ हृदय जब, रूक्ष मनमुखी ज्ञान ।
अहं ब्रह्म कहि ब्रह्म के, चाहैं होन समान ॥८८॥

हद् अज्ञता जीवकी, ब्रह्महिं चाहत होंन।
आश्चर्य अति होत उर, सुनें बात अस कोंन ॥८९॥
कहाँ जीव लघु मसक सम, कहाँ ब्रह्म आकाश।
चाहै होंन समान जड़, यह केवल उपहास ॥९०॥
ज्ञान दशा में ब्रह्म बनि, जीव अधिक विमुखाय।
अज्ञ दशा की बात तब, कही सुनी नहिं जाय ॥९१॥
नर को जामा पहिरि तिय, डाढ़ी मूँछ लगाय।
बने नरइ तिमि आतमा, मिथ्या पुरुष कहाय ॥९२॥
ज्ञान अपर अज्ञान दोउ, दशा कुजीवनि हेत।
बनी पिसाचिनि इष्टके, सनमुख होन न देत ॥९३॥
जड़ नरत्व नानात्व कर, अरु ब्रह्मत्व अभिमान।
ये तीनों त्यागे बिना, मिलत न रामसुजान ॥९४॥
दास सखादिक भावना, अपरहु भाव अनेक।
ये तीनों अभिमान तजि, साधैं कोउ सबिवेक ॥९५॥
रीझत तिन्हिपर जगत पति, पै नहिं तासु समान।
जो समर्पि निज आतमा, सेवत तजि गति आन ॥९६॥
सब धर्मनि कर्मनि तजै, पक्षपात फल फूल।
आत्म समर्पण करि गहै, प्रभु शरणागत मूल ॥९७॥
प्रबल अविद्या गुण मई, जड़ माया सु अनूप।
ठगि न सकै फिर तिन्हैं जो, भये भक्ति के रूप ॥९८॥

द्वितीय प्रकरण

भक्ति सच्चिदानन्द दोउ, सियाराम रस खानि।
सेवत बड़ भागिनि तिन्हैं, आतम सखी सयानि ॥९९॥

रसमय युगल स्वरूप कर, नित नूतन शृँगार।
करि निरखैं दृगसुख लहैं, रसिक सु जीव उदार ॥१००॥
रसिक अलीं शृंगार में, इक ते एक प्रवीन।
तेहि रस में सन्तत रहैं, डूबीं जिमि जल मीन ॥१०१॥
रसनिधि श्री सियराम दोउ, अलि शृँगार रस रूप।
करें भरें आनन्द उर, अकथ अपार अनूप ॥१०२॥
रसमय अङ्गनि परसहीं, भरी उमङ्गनि बाल।
मन मानें शृङ्गार करि, लखि लखि होंयँ निहाल ॥१०३॥
अष्टयाम सब काम तजि, श्री सियराम शृँगार।
करहिं अनूप अनूप नित, मन गुन बानी पार ॥१०४॥
षट बिकार कामादि जो, जड़ माया परिवार।
जात न तहँ जहँ करत नित, श्री सियराम बिहार ॥१०५॥
दिब्य बिभूति बिहार बर, अलिगन दिब्य समाज।
दिब्य चरित शृङ्गार सुख, जहँ सियराम बिराज ॥१०६॥
पुरुष भाव जिन्हि धरेउ उर, ते जन तहाँ न जात।
परम पुरुष सिय साथ जहँ, बिहरत सँग अलि व्रात ॥१०७॥
आत्म समर्पी आतमा, शृँगारिनि तिय रूप।
निवसि तहाँ सियराम पद, सेवहिं अमल अनूप ॥१०८॥
रस कारण रसनायक, उत्तम सब रस माँहि।
सुखप्रद श्री शृङ्गार सम, रसिकनि रस कोउ नाँहिं ॥१०९॥
बातसल्य आदिक जिते, रस प्रभु सेवा योग।
ते सब श्री शृङ्गार के, आश्रित जानहु लोग ॥११०॥

सब रस मय श्रृङ्गार रस, साधे सब सुख होय।
तेहि लगि श्री श्रृङ्गार कहँ, श्रेष्ठ कहहिं सब कोय ॥१११॥
सब रस श्री श्रृङ्गार की, प्रजा पवित्र सभाउ।
सेवहिं धरि धरि रूप तिय, सिय सिय पिय रघुराउ ॥११२॥
श्रृङ्गारी सब रसिक जन, सबके पति श्रीराम।
ज्ञान हींन भटकत फिरैं, तजि तिय भाव ललाम ॥११३॥
प्रभुहिं जगतपति कहत सब, शक्ति आतमहिं भाख।
पति पतनी सम्बन्ध तब, भयेउ भरंत श्रुति साख ॥११४॥
देह खेह सम जानि यह, नश्वर नरक स्वरुप।
जड़माया कृत ग्रसित रुज, रोम रोम अघ कूप ॥११५॥
तजि तेहिकर अभिमान उर, आतम रूप सम्हारि।
सेवहु सिय पति जगत पति, निज पति प्रभुहिं विचारि॥११६॥
सर्बस तजि श्रृंगार रस, आराधहिं सविचार।
मधुर भावना धारि उर, सेवहिं सिय भरतार ॥११७॥
श्रृंगारी जो आतमा, अङ्गी अङ्ग समान।
तन मन ते सेवत सदा, सिय सियपियहिं सुजान ॥११८॥
अमित कुञ्ज बन बाटिका, विमल विहार स्थान।
गऊ लोक साकेत में, वरणत वेद पुरान ॥११९॥
नित्य विहार बखानहीं, प्रभुकर जहँ श्रुति सन्त।
पुरुष तहाँ प्रबिसत नहीं, सेवहिं सखी अनन्त ॥१२०॥

---

१ साक्षी श्रुति देत हैं।

मिथ्या तनकर त्यागि यह, नश्वर नकली ज्ञान ।
दुलहिनि बनि श्रीराम की, आतम परम सुजान ॥१२१॥
सिय सियपिय कर अंग मृदु, सरस सेउ सुखदान ।
बनि दासी खासी सदा, तजि नरत्व अभिमान ॥१२२॥
श्री साकेताधीश प्रभु, सिय स्वामिनि सुख खानि ।
सेइ परम आनन्द लहु, आतम श्रुति सिख मानि ॥१२३॥
सियकी सखी बिसारि पिय, न्यारी नरतनु धारि ।
भई सही नाना विपति, आतम हृदय विचारि ॥१२४॥
पुरुष नपुंसक नारि ये, त्रयलिङ्गी तनु भूरि ।
धरि धरि जड़ माया रचित, भई प्रभू ते दूरि ॥१२५॥
त्रयलिङ्गी के फेर में, चेतन भई अचेत ।
भूली पति गति आपनी, मति रति भगति समेत ॥१२६॥
त्रयलिंगी तनुते पृथक, चेतन केर स्वरूप ।
भक्ति सच्चिदानन्द की, शक्ति सु आत्म अनूप ॥१२७॥
दम्पति श्री सियराम सँग, चेतन विलसनि हारि ।
मधुर मंजरी मुग्ध सखि, प्रौढ़ादिक तनु धारि ॥१२८॥
काम कामना त्यागि सब, नाम राम गहि लीन ।
सिय स्वामिनि के संग सुख, विहरहिं धाम प्रवीन ॥१२९॥
श्री सियराम निवास थल, धाम काम भय पार ।
ब्रह्मरूप साकेत पुर, श्री गोलोक मझार ॥१३०॥
सालोकी - सामीप्य - पुनि, सायोजी - सारूप ।
अरु सारिष्ट सु पाँच ये, मुक्ति प्रसिद्ध अनूप ॥१३१॥

खट् शरणागत षष्ट पुनि, सम्पति द्वादश भक्ति ।
अर्थ सुपंचक रहस त्रय, तत्व त्रय अनुरक्ति ॥१३२॥
नाम रूप लीलादि जो, परिकर प्रभु कर चारि ।
संस्कार पुनि वैष्णवी, श्रुति कह पंच पुकारि ॥१३३॥
शृंगारादिक पंच रस, अरु अनन्यता ज्ञान ।
शुचि सन्तन कर संग पुनि, सेवा-गत अभिमान ॥१३४॥
विषय रहित इन्ह सबनि के, ज्ञाता भले प्रकार ।
कृपापात्र प्रभु गुरुनि के, विमल विवेक विचार ॥१३५॥
आतमज्ञानी अचल मति, रहित समस्त विकार ।
ते जन श्री गोलोक बसि, प्रभु संग करत विहार ।१३६॥
परम अशोक सुलोक अरु, अति बिस्तरित ललाम ।
बड़भागी सुकृती सकल, निवसत जीव तमाम ॥१३७॥
मारग थल आनन्दमय, जल फल अमी समान ।
कामधेनु सुरतरु अमित, घर बन बहु मैदान ॥१३८॥
सर सरिता वापी कुवाँ, सुखद सुलता वितान ।
रचना श्री गोलोक की, को कबि करै बखान ॥१३९॥
ललनागन कोटिनि तहाँ, निवसहिं सुख स्वच्छन्द ।
प्रभू अनेकन रुपधरि, देत सु तिन्हें अनन्द ॥१४०॥
खास सहर साकेत जो, कनक भवन चहुँओर ।
तेहि रचना महिमा कहत, सकुचहिं शेष करोर ॥१४१॥

× उपरोक्त संपूर्ण बिषय जाननेकी इच्छा होय तो श्रीबृहद्उपासना ग्रंथ देखें ।

अति उतंग कञ्चन भवन, विपुल विभूति बिराज ।
सकल सच्चिदानन्दमय, सोभा साज समाज ।।१४२।।
नवधा दशधा ग्यारवीं, परा द्वादशी भक्ति ।
आराधक इन्ह केरि जो, आत्म समर्पी सक्ति ।।१४३।।
शृंगारिन स्वकिया सकल, रटत नाम सियराम ।
परम अनन्य अकाम सुचि, निवसहिं ते तेहि धाम ।।१४४।।
मध्य सहर साकेत के, मणि मय महल विशाल ।
तेहिकर रचना अकथ जहँ, राजहिं सिय रघुलाल ।।१४५।।
वृन्द वृन्द ललना ललित, सेवहिं सुरुचि निहारि ।
सिय सिय पिय सँग करहिं सुख, निशिदिन नाम उचारि।१४६
चन्द्रकलादिक सहचरीं, बड़ीं बड़ीं गुणवान ।
श्री सिय स्वामिनि सरिस सों, युथ्थेश्वरीं प्रधान ।।१४७।।
तिन्हि की भुज छाँहीं तरे, अलिगन यूथ अपार ।
उमा रमा सी राजहीं, सकल गुणनि आगार ।।१४८।।
आचारज युथ्थेश्वरी, जेहि विधि देइँ निदेश ।
तेहि विधि ललना गण हरषि, रिझवहिं श्री सीतेश ।।१४९।।
कुञ्जनि में कहुँ बननि में, बागनि में कहुँ केलि ।
सखिनि संग सियराम दोउ, करत सु नित्य नवेलि ।।१५०।।
शृंगारादिक गिरिनि कहुँ, कहुँ जल थल मैदान ।
विहरत कहुँ नभ संग सखि, चढ़ि चढ़ि बिमल बिमान ।।१५१।।
ऊपर चढ़ि साकेत की, निरखत शोभा सर्व ।
बैकुण्ठादिक ब्रह्मपुर, जेहि सनमुख सब खर्ब ।।१५२।।

सहजहिं भवन उतङ्ग अति, हेम रचित मणि जाल।
परे झरोखनि जगमगित, जड़े कँगूरनि लाल ॥१५३॥
ध्वज पताक मन्दिरनि प्रति, केतु सु नाना रंग।
बड़े बड़े फहरात नभ, उपमा रहित अभंग ॥१५४॥
पुर शोभा अवलोकि दोउ, उतरेउ सखिनि समेत।
सिविकनि चढ़ि निरखत नगर, गवने निज सु निकेत ॥१५५॥
भोजन करि सु समाज सह, बैठे सेज कृपाल।
ललना साधि सु यंत्र मृदु, गावहिं चरित रसाल ॥१५६॥
कोउ जल झारी विजन कोउ, चमर छत्र कोउ बाल।
अतरदान दरपन सु कोउ, कोउ सखि सुमन सु माल ॥१५७॥
पीकदान छाता छड़ी, कोउ मणि जटित उपान।
पान पवावति हरषि हिय, प्रेमलता सु पुरान ॥१५८॥
यहि विधि सेवहिं चतुर सब, अलिगन सिय सिय पीव।
निवसि धाम सँग नाम रटि, प्रमुदित हृदय अतीव ॥१५६॥
सद्गुरु कृपा सु पाय मैं, रटि सियराम सु नाम।
लखेउँ कछुक सियराम कर, चरित सकल सुख धाम ॥१६०॥
संस्कार करि पंच मम, जड़ नरत्व अभिमान।
नाशेउ दुख प्रद पलक में, श्री सद्गुरु भगवान् ॥१६१॥
बार बार वलि जाउँ मैं, सद्गुरु दीन दयाल।
नाम रटाय लखायेऊ, सिय पिय रहस रसाल ॥१६२॥
लख चौरासी योनि में, त्रयलिङ्गीं तनु धारि।
भोगेउँ दुख बहु काल अति, सद्गुरु लीन्ह उबारि ॥१६३॥

श्री सियलाल सु शरण अरु, प्रेमलता दुइ नाम।
दीन्ह एक तनु थूल कर, इक आतमी ललाम ॥१६४॥
श्री रसराज श्रृंगार कर, भाव सुखद सम्बन्ध।
दीन्ह दयाकरि सद्गुरु, नाशि जगत दुर्गन्ध ॥१६५॥
अष्टयाम की भावना, करन कहेउ रटिनाम।
सद्गुरु परम उदार मम, रसिकराज सुखधाम ॥१६६॥
सरयू तट लक्ष्मण किला, तहँ सिय बाग सुहाग।
अवध धाम गुरु कीन्ह मोहिं, शिष्य सहित अनुराग ॥१६७॥
श्रीराम वल्लभा शरण मम, सद्गुरु परम सुजान।
निर्मायेउ पुनि सरयू तट, सद्गुरु सदन स्थान ॥१६८॥
नाम रटन के भेद मोहिं, अरु उपासना रीति।
बारबार बहु भाँति प्रभु, समुझायेउ कर प्रीति ॥१६९॥
काव्य करन की दीन्ह पुनि, आज्ञा श्री गुरुदेव।
सबहिं सुधारि मोरि प्रभु, मेटि अटर अवरेव ॥१७०॥
द्विजकुल बल जड़ देहकर, रहेउ कछुक अभिमान।
नाशेउ आवागमन प्रद, देइ सु आतम ज्ञान ॥१७१॥
कर्म्म ज्ञान वैराग्य बर, जप तप साधन ध्यान।
कीन्हेउ पूजा पाठ बहु, गयेउ न तन अभिमान ॥१७२॥
श्री हनुमत ढिग बैठि तब, लगेउ रटन सियराम।
घरही में लघु वयस मधि, लय लगाय वशुयाम ॥१७३॥
भयेउ कालवश मातु पितु, तब मोहिं देखि स्वतंत्र।
ब्याह हेतु द्विज ज्ञाति के, लगेउ रचन षड़यंत्र ॥१७४॥

श्री हनुमान सु सन्त कर, रूप धारि मोहि पाँहिं।
कहेउ ब्याह दुख रूप लखि, तजि रमि नामहिं माँहि॥१७५॥
वचन शीस धरि त्यागि सब, घर महि मन्दिर बाग।
चित्रकूट चलि आयेऊँ, लखि उपजेउ अनुराग॥१७६॥
निवसि तहाँ सियराम रटि, कछु दिन बितइ बहोरि।
गयेऊँ अवध प्रभु प्रेरित, सुघरी जहँ सब मोरि॥१७७॥
श्री सद्गुरु अस पायऊँ, जस नहिं काहुइ केर।
सन्त भक्त माला सुमधि, मानहु सुघर सुमेर॥१७८॥
गुरु बिनु भटकेउँ बहुत दिन, चहुँदिशि सहसनि कोश।
कियेउँ कर्म साधन विपुल, भयउ न उर सन्तोष॥१७९॥
श्री सियराम सु नामकी, रटना श्री हनुमान।
सुनि सद्गुरु सु मिलायऊ रघुपति रूप सुजान॥१८०॥
श्री मत हनुमतलाल की, कृपा कटाक्ष सु पाय।
सद्गुरु मिलेउ सु खिलेउ उर, कमल अमल सुखदाय॥१८१॥
प्रगटो श्रद्धा रूपिनी, सुचि सुगन्ध तेहि माँहिं।
युगल नाम मधुपी मधुप, निशिदिन तहँ विलसाँहिं॥१८२॥
खुलेउ हिये के नयन दोउ, सूझेउ सारासार।
भासेउ निज पर रूप शुचि, नाशेउ मोह अँधार॥१८३॥
मिथ्या जड़ पुरुषत्व जो, बहिरंगी अभिमान।
छोड़ेउ छन में आतमा, लखि निज रूप प्रधान॥१८४॥
शक्ति रूप सियकी सखी, चेतन आतम नाम।
राम प्राण पति जानि जिय, तजेउ नरत्व निकाम॥१८५॥

श्री सियराम विहार में, मिली जाय पर धाम।
छूटेउ आवागमन दुख, जड़ ममता मद काम ॥१८६॥
दास सखादिक भाव बहु, सत्य प्रमाण समेत।
अहहिं तदपि सखि भाव यह, खास प्रधान सचेत ॥१८७॥
काम रहित सियराम कर, नित्य विहार रसेश।
अवलोकहिं केवल अलीं, पुरुष न करहिं प्रवेश ॥१८८॥
अलीं सखा दासादि बनि, देति बाहिरहु काम।
भीतर तौ अधिकार सब, उनहिंन कर बशुयाम ॥१८९॥
आलिनि की नहिं रोक कहुँ, कवनिहुँ सेवा माँहिं।
वाहिर भीतर कहुँ रहैं, प्रभु वे बिछुरति नाँहिं ॥१९०॥
शक्ति सकल सियराम की, घट घट करहिं निवास।
सेवहिं सोइ बहुरूप धरि, प्रभुहिं सविधि सहुलास ॥१९१॥
सचर अचर नर नारि में, सक्तिहि परम प्रधान।
सोइ निज रूप सँभारि बुध, तजहिं देह जड़ ज्ञान ॥१९२॥
सद्गुरु बिनु निज रूप सो, बलकरि सूझत नाँहिं।
काजर जिमि दर्पण बिना, यद्यपि आँखिनि माँहि ॥१९३॥
दर्पण रूप सु सद्गुरु, मिलें होय परकाश।
सूझै तब निज रूप वह, जो उर करत निवास ॥१९४॥
तीनि होंयँ तब लखै निज, रूप अनूपम जीव।
छूटै तन बन्धन कठिन, सहज मिलैं सिय पीव ॥१९५॥
दर्पण नयन प्रकाश तिहुँ, विमल बिना निजरूप।
लखि न सकै जीवातमा, जो सब भाँति अनूप ॥१९६॥

दर्पण रूप सु सदगुरु, ज्ञान बिराग सु नयैन ।
नामरटन परकाश लहि, निरखै रूप सुखैन ॥१९७॥
श्री सियराम सु नाम की, रटन खूब जो कोय ।
करै खुलैं तब नयन दोउ, उर प्रकाश अति होय ॥१९८॥
सदगुरु दर्पण रूप तब, खोजै मन चितलाय ।
मिलें लखै निज रूप सो, भव भ्रम तुरत नशाय ॥१९९॥
मिले बिना गुरु नाम पुनि, रटे बिना लयलाय ।
खुले बिना हिय नयन निज, रूप न परै लखाय ॥२००॥
विना लखे वह रूप निज, चेतन फिरै भुलान ।
झूठे कहँ साँचों समुझि, बकत आनकी आन ॥२०१॥
लखै सत्य निज रूप जब, सुन्दर अमल अनूप ।
फिरि न दिखाय असत्य यह, जड़ माया कृत रूप ॥२०२॥
लखतहिं आपन रूप पर, परमातमा लखात ।
सर्वेश्वर सियराम दोउ, गोर श्याम मृदु गात ॥२०३॥
छबि गुण सिन्धु अथाह दोउ, सरल सुभाव उदार ।
आतम लखि लपटै चरण, तजि सब धर्म असार ॥२०४॥
स्वामिनि श्री सिय पाय निज, स्वामी पति श्री राम ।
सेवा सुख लूटन लगी, जीवातम वशुयाम ॥२०५॥
कर्म धर्म अब को करै, जप तप साधन ध्यान ।
आतम सेवा सुख पगी, पाइ सुइष्ट सुजान ॥२०६॥
सुन्दर पति अनुकूल जिमि, लहि तिय पितुकर धाम ।
त्यागै तिमि जग आतमा, तजै पाय सियराम ॥२०७॥

श्री हनुमत गुरु नाम की, कृपा अनुग्रह पाय।
प्रेमलता सियराम लहि, सुखी भई अधिकाय ॥२०८॥
भ्रम बाधा सब दूरि करि, कृपा अहेतुक कीन।
जड़ नरत्व विनशाय मोहि, टहल महल की दीन ॥२०९॥
सिय पिय युगल विहार सुख, निरखै गुरू प्रसाद।
प्रेमलता सियराम रटि, बिनशे सकल बिषाद ॥२१०॥
सद्गुरु प्रद दृढ़ भाव जो, धारेउ टरै न सोय।
पाके पीछे फलसु जिमि, बहुरि न काचो होय ॥२११॥
सद्गुरु कर उपदेश शुभ, तजै शिष्य जो कोय।
लख चौराशी भोगि पुनि, परै नरक में सोय ॥२१२॥

श्री धाम महत्व वर्णन तृतीय प्रकरण

एक बार गुरु कहेउ मोहिं, प्रेमलता रटि नाम।
निवसि सुखी सीतामढ़ी, लखि निज इष्ट सुधाम ॥२१३॥
गुरु आज्ञा शिर धारि सो, तजि सब तीरथ धाम।
सीतामढ़ी सु देह भरि, बसिहौं रटि सियराम ॥२१४॥
यज्ञ थली मिथिलेश को, जन्म भूमि सिय केरि।
निवसत चहुँदिशि साधु मुनि, भुक्ति मुक्ति प्रद हेरि ॥२१५॥
पूरब सिद्ध प्रसिद्ध जग, वसत लच्मणा तीर।
औरहु इन्ह के शिष्य गण, निवसत बाँधि कुटीर ॥२१६॥
दर्शन हित नित आवहीं, ऋषि मुनि सन्त सु वृन्द।
देखि भूमि मनहरन थल, पावहिं परमानन्द ॥२१७॥
सिद्धाश्रम सु पुनीत तहँ, मिथिला शरण सु सन्त।
सेवहिं ते हरिजन हरषि, गाय सु गुन सियकन्त ॥२१८॥

धनीराम जी साधु सुचि, मौनी खाकी वेष ।
जनक नंदिनी शरण ये, सेवहिं सन्त हमेश ॥२१९॥
श्री सदगुरु सुनिवास में, मैं हूँ करौं निवास ।
शिष्यन सह सियराम रटि, गुरु प्रसाद तजि त्रास ॥२२०॥
परम पावनी भावनी, दोष दावनी गङ्ग ।
पुरपूरब दिशि बहति सो, धारा धवल अभङ्ग ॥२२१॥
नाम लक्ष्मण कामप्रद, सियकी सखी अनूप ।
मज्जहिं पीवहिं नीर जे, ते न परहिं भव कूप ॥२२२॥
पूरब दक्षिण कोन पर, सिष्यनि सहित सु खास ।
चक्र नाम गुण ज्ञान निधि, करत महामुनि वास ॥२२३॥
चक्र नाम कर ग्राम इक, वर्तमान तेहि ठाम ।
गोप जाति तेहि महँ बसत, जपत जानकी नाम ॥२२४॥
दक्षिणदिशि श्रीखड्ग ऋषि, तीक्षन खड्ग समान ।
बास करत मुनि गन सहित, पारग वेद पुरान ॥२२५॥
खरका ग्राम सु बसेउ तहँ, वास करत वहुग्वार ।
सेवहिं हरिजन साधु मुनि, जो कोइ आवैं द्वार ॥२२६॥
पुंडरीक मुनि पश्चिम, बसत संग ऋषि बृन्द ।
ज्ञान योग तप निष्ट सब, भजहि सच्चिदानन्द ॥२२७॥
पुंडरीक सर सुभग तहँ, बसेउ पुनौरा ग्राम ।
निवसहिं सज्जन लोग सब, धर्म निष्ट अभिराम ॥२२८॥
ग्राम पुनौरा के निकट, आशाराम सु सन्त ।
धरि उर आशाराम की, रामहि भजैं निचन्त ॥२२९॥

इन्हकर आश्रम सुभग अति, हरिजन अवात जात ।
भगत पुनौरा ग्राम के, सेवत पद पुलकात ॥२३०॥
उत्तर दिशा सु कपिल मुनि, भजनानन्द पवित्र ।
सार ग्रही निवसहिं सदा, नृप विदेह के मित्र ॥२३१॥
इन्हकी भुज छाया तरे, करत विपुल मुनिवास ।
यजन भजन तप धर्म रत, गत ममता मद त्रास ॥२३२॥
बस्ती इक कपरौल तहँ, निवसेउ मुनि के नाम ।
बास करत तेहि माँहिं सब, धर्म निष्ट नर बाम ॥२३३॥
उत्तर पूरब कोन में, पंथ सुपाकर ग्राम ।
त्रेता कर तहँ वृच्छ द्वै, पाकर केसु ललाम ॥२३४॥
रामप्रसाद सुसन्त तहँ, वेद सु शास्त्र स्वरूप ।
निवसत पुरबासिहुँ सकल, तस धर्मज्ञ अनूप ॥२३५॥
येहि विधि चहुँदिशि भक्त मुनि, साधू सन्त अनन्त ।
बसहिं घेरि घर बाँधि मठ, भजहिं जानकी कन्त ॥२३६॥
मध्य सु पुरी सु लच्छणा, सीतामढ़ी सुनाम ।
राजति अनुपम अचल जहँ, निवसत श्री सियराम ॥२३७॥
पञ्चकोश के कोष में, वसति पुरी निर्दोष ।
सुलच्छना सब गुण भरी, निरखि होत उर तोष ॥२३८॥
वृच्छावलि चहुँदिशि लसै, सघन सुहावन चारु ।
फूलित फलित मनोहर, निरखि लजत रति मारु ॥२३९॥
उत्तर पूरब कोण में, न्यायालय रमणीक ।
पच्छपात की बात तजि, होत न्याव तहँ ठीक ॥२४०॥

निकट औषधालय ललित, इस्टेशन लघु लैन।
ठाम ठाम विद्या भवन, शोभित बहु सुख दैन ॥२४१॥
भवदे नामक पुर बसे, उत्तर गणिकनि ग्राम।
विषयनि कहँ भवदेत सो, तेहि कारण यह नाम ॥२४२॥
गोशाला पच्छिम दिशा, धेनु करैं बहु बास।
सेवा करत यथारथ, सह श्रद्धा गोदास ॥२४३॥
दच्छिण दिशि लघु यमन पुर, बसत यमन अनुकूल।
जपत जानकी नाम सब, बेचि खात फल मूल ॥२४४॥
पुरी निकट प्राचीन अति, श्री जानकि अस्थान।
सन्त भागवत दास तहँ, रहेउ महान प्रधान ॥२४५॥
तेहि अस्थान समीप अति, उत्तर त्रेता केर।
लसत उर्विजा कुंड इक, तासु प्रभाव घनेर ॥२४६॥
जगत जननि श्री जानकी, हरन हेतु महिभार।
सखिन सहित तेहि कुंडते, प्रगटेउ परम उदार ॥२४७॥
रबि सतकोटि प्रकाश मय, सिंहासन तेहि माँहिं।
बैठीं कोटिनि चन्द्र सम, सीतल सिया सोहाँहिं ॥२४८॥
उमा रमा रति मद हरण, ललना गन चहुँओर।
निज निज कर सेवा लिये, राजहिं सब चितचोर ॥२४९॥
तेहि अवसर श्री अवधते, सियहिं मिलन श्रीराम।
चढ़ि बिमान आयेउ तहाँ, हर्षि हृदय सुख धाम ॥२५०॥
मिलेउ परस्पर लाइउर, प्रेम न बरणो जाय।
हर्षि सुरन बरषेउ सुमन, सुरतरु के सुखदाय ॥२५१॥

बैठे दोउ भुज अंश धरि, लखहिं परस्पर रूप ।
ललना गण कृत कृत्य सब, हेरहिं सु छबि अनूप ॥२५२॥
मन्द मन्द मुशुकाय प्रभु, धरि सिय चिवुक सुहाथ ।
सुधा सरिस सुखदाय अति, बोलेउ श्री रघुनाथ ॥२५३॥
तुम विनु चैन न परत मोहिं, सुनु सिय सब सुखधाम ।
करत रहेउँ तब मूर्तिकर, ध्यान हृदय बशुयाम ॥२५४॥
जीवनि पर तब रहति अति, दया प्रिया तेहि हेत ।
विलग होय प्रगटत यहाँ, हम तुम तजि साकेत ॥२५५॥
तुम मिथिला मैं अवधपुर, कछु दिन होत वियोग ।
धर्म स्थापन अर्थ दोउ, सहत विलगता शोग ॥२५६॥
सिय बोलीं मुसिकाय तब, नीक कही पिय बात ।
जीवनि सुख प्रद धर्म हित, करत चरित जग त्रात ॥२५७॥
पिय बोले हिय हर्षि पुनि, बाल चरित बहु रंग ।
करि सुख युत इन्हि अलिनि सह, बिहरेंगे दोउ संग ॥२५८॥
भजहिं तोहि सीतामढ़ी, निवसि मज्जि यहि कुंड ।
तिन्ह कहँ मैं अपनाइहौं, नाशि अमित अघ झुंड ॥२५९॥
बारबार मिलि परस्पर, अलिनि देई आशीस ।
चढ़ि बिमान हर्षित हिये, अवध गयेउ जगदीश ॥२६०॥
गोर श्याम आभा परत, हरित कुंड को नीर ।
भयेउ न जानत भेद कोउ, प्रभु गति मति गंभीर ॥२६१॥
हवन सु कूप अनूप इक, मध्य कुंड बर बीच ।
मगन[1] रहत जल माँहिं सो, मर्म न जानहिं नीच ॥२६२॥

---

[1] जल में डूबे रहना ।

दरश परस मज्जन तथा, पान करै जल कोय।
बिमल उर्विजा कुंड कर, यमपुर जाय न सोय ॥२६३॥
कुंडनिकट उत्तर दिशा, मंदिर जग विख्यात।
राजति जहँ श्री जानकी, प्रगट हरन अघ ब्रात ॥२६४॥
नित नव मंगल मोद तहँ, उत्सव कथा पुरान।
होत सु आवत जात बहु, दरशक गुणी महान ॥२६५॥
सज्जन सन्त महन्त मुनि, गृही गरीब अमीर।
जात परम सुख पावहीं, लखि छबि सिय रघुबीर ॥२६६॥
पावहिं सब मन कामना, निज निज रुचि अनुसार।
सुनेउ न कहुँ त्रय लोक में, अस उदार दरबार ॥२६७॥
महिते प्रगटी सीय जो, धरेउ युगल सोइ रूप।
एक जन्म भूमी रही, इक नृप गेह अनूप ॥२६८॥
बैठी यज्ञ सुक्षेत्र महँ, अचल धारि ब्रत मौन।
तरै न जो भव सिन्धुते, दरसन करि अस कौन ॥२६९॥
यज्ञ क्षेत्र सीतामढ़ी, भूमि सु परम पवित्र।
पुनि बैठीं सिय प्रगटि तहँ, औरहुँ भई विचित्र ॥२७०॥
भक्त भीर लागी रहे, साँझ भोर दरबार।
नाचहिं गावहिं गुण गुणी, करि करि जय जयकार ॥२७१॥
पुरी निवासी दिवश निसि, रटहिं जानकी नाम।
शिरी जानकी जानकी, जानकि जानकि राम ॥२७२॥
सिया दुलारे ज्ञान निधि, जन रक्षक हनुमान।
राजत निकट सु दाहिने, महावीर बलवान ॥२७३॥

तिन्हैं सुनावैं बैठि कोउ, श्री सियराम सु नाम।
रीझत तेहि पर अधिक अति, पूरत सब मन काम ॥२७४॥
श्री शिव गिरिजा गणपती, सेवत सब दरबार।
गावत गुण पावत सकल, यथा सु विधि सतकार ॥२७५॥
ध्वज पताक तोरन लसत, वन्दनवार वितान।
सिय निवास अनुपम अकथ, बाजत सदा निशान ॥२७६॥
मन्दिर के सन्मुख निकट, प्राचीदिशि सुचि सन्त।
नीति निपुण गुण ज्ञान निधि, निवसि भजत सियकन्त।२७७।
नाम महाविरदास जस, तस करनिउँ विख्यात।
तन मन धन अरपेउ सकल, सियकर लखि कुशिलात॥२७८॥
सम्पति सब सियकेरि लखि, साधु सन्त कर भाग।
संचत तेहि परमार्थ हित, श्रमकरि सह अनुराग ॥२७९॥
सिया विहारी शरण जी, सन्त रशिक विद्वान।
सिय मन्दिर के पश्चिम, बसत विरचि अस्थान ॥२८०॥
अतिथिनि की सेवा करत, जो कोउ आवत द्वार।
अन्नदान श्रद्धा सहित, देत सबहि सविचार ॥२८१॥
सिष्यनि सन्त सजातिनि, सहित सिया रघुवीर।
भजत निवसि सीतामढ़ी, दृढ़ प्रण करि मति धीर ॥२८२॥
इन्हके निकट सुहावनों, मन्दिर कुर्सीदार।
रामबहादुर सिंह यक, निरमायेउ मुखतार ॥२८३॥
पधरे श्री सियराम तहँ, भगतहिं बंश समेत।
दीनबन्धु सिय करि दया, पठइ दीन्ह साकेत ॥२८४॥

ठाम ठाम देवालय, फूल बाटिका बाग।
सोभित सकल मनोहर, लखि उपजत अनुराग ॥२८५॥
पारग वेद पुराण द्विज, धनिक वनिक सब जाति।
बसहिं सुखी सीतामढ़ी, त्रिभुवन में विख्याति ॥२८६॥
गलीं बजार सुहावने, भवन सुघने विशाल।
सोहहिं लता वितान बर, फूलित फलित त्रिकाल ॥२८७॥
धर्म्म पुस्तकालय ललित, कर्मी धर्मी लोग।
खोलेउ पढ़ि पढ़ि साधहीं, जन जप तप ब्रत योग ॥२८८॥
खुले भोजनालय रहैं, विपुल सु आठौ याम।
परदेशी भोजन लहैं, जी चाहे दै दाम ॥२८९॥
निश्किञ्चन हरि जननि हित, चेत्र सु सन्त महन्त।
खोलेउ पावहिं ते तहाँ, भोजन भजि भगवन्त ॥२९०॥
बणिक दुकाने साजि बहु, बैठे विविधि प्रकार।
क्रय बिक्रय बहु वस्तु कर, करत सु सहित बिचार ॥२९१॥
विविधि मोल के वस्त्रबर, बासन वस्तु अनेक।
भरीं दुकानिनि में विपुल, जुगवहिं जन सविवेक ॥२९२॥
देत मोल विनु मोल हूँ, सन्त जननि कहँ दान।
बड़े बड़े परमारथी, सियपुर बसहिं सुजान ॥२९३॥
बनीं धर्मशाला ललित, जहँ तहँ कथा पुरान।
कहत सुनत सज्जन सकल, विगत मोह मद मान ॥२९४॥
लीला कीर्तन रास नृत, गान बजान अनन्द।
होत रहत नित नित नवल, सीयामढ़ी सुखकन्द ॥२९५॥

उत्साही सियराम कर, झूलन जन्म उछाह ।
समय समय सब करहिं मिलि, होरी आदि विवाह ॥२९६॥
पुरी मध्य मन्दिर विपुल, देवालय तिन्हि माँहिं ।
होत सु कीर्तन नेम ते, प्रभु यश दूसर नाँहिं ॥२९७॥
गुनी गनी बुध गायका, कवि ज्ञानी सुचि सन्त ।
बसत पुरी महँ नारि नर, धर्म शील यशवन्त ॥२९८॥
शिद्ध तपोधन योगि जन, भजनानन्द महान ।
पुरी मध्य निवसत सदा, गुप्त प्रगट मति मान ॥२९९॥
श्री रामरत दासादि जिन्हि, सर्पहि दीन्यो ज्ञान ।
चेतायेउ नृप भजन बल, निर्मायेउ अस्थान ॥३००॥
शिद्धनि केर सराँयँ श्री, सीतामढ़ी पुनीत ।
भोगी भागी भाविक, बसहिं अमीर अतीत ॥३०१॥
गंग लक्ष्मणा आदि शुचि, तीर्थ उर्विजा कुंड ।
बापी कूप तड़ाग बहु, लखत नशहिं अघ झुंड ॥३०२॥
दिब्य पुरी वासी सकल, खान पान ब्योहार ।
दिब्य भाव भूषन वसन, धर्म अचार विचार ॥३०३॥
ऋधि सिधि निधि घेरे रहत, पुरी पवित्र सु जानि ।
उन्नति सो नित नित नई, करै सकल गुण खानि ॥३०४॥
जन्म भूमि सिय केरि श्री, सीतामढ़ी अनूप ।
थकेउ सारदा शेष श्रुति, बरणत जासु स्वरूप ॥३०५॥
मैं मतिमन्द गमार अति, अबिचारी अज्ञान ।
पुरी महातम अमित अति, केहि विधि करौं बखान ॥३०६॥

विमल नयन मति देइँ जब, सिय स्वामिनि श्री राम ।
सूझै तब प्रभु की दया, पुरी प्रभाव ललाम ।।३०७।।
नाम हलेश्वर लिङ्ग एक, त्रेता कर सु प्रसिद्ध ।
पुरी निकट उत्तर दिशा, राजत प्रद नव निद्धि ।।३०८।।
पुरी मध्य बाहिर बिपुल, त्रेता के अस्थान ।
सोहत हेरत हरतमन, उपजत आतम ज्ञान ।।३०९।।
पुरी निकट चहुँदिशि ललित, ग्रामसु बसहिं अनूप ।
प्रभु प्रेमी तिन्हि महँ बिपुल, निवसहिं प्रेम स्वरूप ।।३१०।।
ग्राम परौरी महँ बसत, भक्त प्रदीप प्रधान।
वैष्णव धर्म सु धारि दृढ़, करत राम गुण गान।।३११।।
संग सजातिनि लेइ नित, कीर्तन सिय दरबार ।
करत भरत आनद उर, भक्त प्रदीप उदार ।।३१२।।
प्रभु यश कीर्तन होई तहँ, सङ्गी साज समेत ।
जाय करत आनन्द अति, भक्त प्रदीप सचेत ।।३१३।।
तिमि महँसौलि सु ग्राम महँ, गंग लक्ष्मणा तीर ।
श्री सियकान्त सु शरण द्विज, निवसत वैष्णव बीर ।।३१४।।
मैथिल बंश उधारक, प्रभु प्रेमी विद्वान ।
रसिक सजातिनि संग मिलि, करत सदा गुण गान ।।३१५।।
श्रींगारी भाविक भगत, दृढ़ उपासना माँहिं ।
श्री सियराम विहाय तेहि, सपनेहुँ पर गति नाँहिं ।।३१६।।
बैदेही बल्लभहि नित, सेवत बिरचि सु कुञ्ज ।
तत सुख महँ सन्तत मगन, रहत निरखि छबि पुञ्ज ।।३१७।।

प्रभु के प्रेमी जननि की, महिमा अगम अपार।
कहेउँ कछुक दुइ एक की, लघु बुधि बल अनुसार ॥३१८॥
बरणौं सब के नाम गुण, अस न शक्ति मो बीच।
ग्रन्थौ बाढ़ पार किमि, लहै मोर मति नीच ॥३१९॥
पुरी मध्य बाहिर बसहिं, प्रभु प्रेमी जो कोय।
बन्दों सब के पद कमल, अनुचित छमिहहिं सोय ॥३२०॥
गुप्त प्रगट सुर सिद्ध मुनि, गुणी भगत द्विज सन्त।
पुरी निवासी सकल मम, अनुचित छमिहहिं अन्त ॥३२१॥
राम प्रिया जग जननि सिय, आदि शक्ति गुण खानि।
तासु पुरी महिमा अमित, को कबि कहै बखानि ॥३२२॥
धन्य पुरी वासी सकल, धन्य भूमि जेहि माँहिं।
प्रगटीं सिय सर्वेश्वरी, जेहि समान कोउ नाँहिं ॥३२३॥
धन्य लछिमना गङ्ग बर, वापी कूप तलाव।
धन्य उर्विजा कुंड जेहि, लखि पापीहुँ गति पाव ॥३२४॥
धन्य पशू पच्छी सकल, जीव लता तरु धन्य।
जन्म भूमि सिय केरि जो, बसत न तिन्हिसम अन्य ॥३२५॥
जन्म भूमि सिय केरि जो, सेई लखी न नयन।
बादि लीन्ह जग जन्म सो, निज जननिहिं दुख दयन ॥३२६॥
दान धर्म जप योग व्रत, तीरथ साधन ध्यान।
जन्म भूमि सियकेरि के, होत न दरश समान ॥३२७॥
कोटिनि तीर्थनि के करै, विधिवत कोउ अस्नान।
गंग लछमणा केरि के, होत न दरश समान ॥३२८॥

एक पहर एक दिवस बरु, पक्ष मास एक साल ।
बास करै सीतामढ़ी, सो न परै जग जाल ॥३२९॥
न्हाइ उर्बिजा कुंड बरु, गंग लच्छमणा माँहिं ।
ते जन तजि स्थूल तन, राम धाम महँ जाँहिं ॥३३०॥
सात दीप नव खण्ड पुनि, भुवन चतुर्दश माँहिं ।
जन्म भूमि सिय केरि सम, महि पुनीत कहुँ नाँहिं ॥३३१॥
सर्व दुराग्रह त्यागि जो, बास करहिं बसुयाम ।
रटैं नाम सियराम मुख, पावहि सब मन काम ॥३३२॥
सर्व भक्ति साधननि ते, नाम सु प्रभु प्रियकेर ।
रटैं निवसि सीतामढ़ी, पावहिं ते सुख ढेर ॥३३३॥
अन्त रटैं ते नामहीं, कृपा सौगुनी रूप ।
करत रटैं जो निवसि जन, सीतामढ़ी अनूप ॥३३४॥
कर्म धर्म जप जाग ब्रत, अनुष्ठान जो कोय ।
करै निवसि सीतामढ़ी, सहस गुणों फल होय ॥३३५॥
महितल महँ सीतामढ़ी, काम धेनु सुर रूख ।
सेवत नाशत जननि की, सब प्रकार की भूख ॥३३६॥
वैष्णव सन्तनि द्विजनि जो, भोजन वसन सुदान ।
देइ लेइ सो कोटि गुणा, फल पवित्र मतिमान ॥३३७॥
पधरावै सुर सदन रचि, कूप बावड़ी ताल ।
खनवावै परमार्थ हित, ताहि न ब्यापै काल ॥३३८॥
सीतामढ़ी निवास करि, नाम रटैं जन कोय ।
तिन्हिकी सेवा करहिं जो, सब सुख पावहिं सोय ॥३३९॥

सीतामढ़ी निवासकरि, सेवत जो सुचि सन्त ।
तिन्हें देत निज धाम पर, रीझि जानकी कन्त ॥३४०॥

स्वामी
श्री सिया लाल
शरण जी
महाराज

उपनाम
श्री प्रेमलता जी
जय सियाराम
नाम जापक

पावन तिरहुत देश महँ, उभय पुरी अभिराम ।
सेवत तिन्हि पावहिं सकल, जन मन वाञ्छित काम ॥३४१॥
ब्याहथली सियराम की, मिथिला सब सुख दान ।
दरशन ते अघ नाशहीं, महिमा वेद बखान ॥३४२॥
जनक नगर छबि लखि छके, रामहुँ लखन समेत ।
राजत अनुपम भूमितल, जनु दूसर साकेत ॥३४३॥
बड़े बड़े मुनि सिद्ध तहँ, राजऋषी मिथिलेश ।
निवसत जिन्हि के दरश करि, नाशहिं सकल कलेश ॥३४४॥
जन्म भूमि तिमि सीय की, सीतामढ़ी विचित्र ।
विहरहिं जहँ श्रीसीयनित, करहिं चरित्र पवित्र ॥३४५॥
पुरी पवित्र सु लच्मणा, नाम बखानत वेद ।
तेहिकर दूसर नाम उप, सीतामढ़ी अखेद ॥३४६॥

श्री सियाराम अनन्य अति, रसिक सु सज्जनानन्द ।
[illegible] वर [illegible], जिन्हैं मानत मुनि वृन्द ॥३६९॥
गंग लक्ष्मणा तीर पर, निवसत विमल अमान ।
सेवत सन्त समाज नित, करि सियवर गुणगान ॥३७०॥
मन श्रद्धा भक्ति अमित, निजकर प्रभु की टहल ।
करत लखेउँ निज नयन नित, जान गहेउ सिय महल ॥३७१॥
दर्शन सिय दीन्हेउ तिन्हैं, प्रान लक्ष्मणा तीर ।
मज्जन हित नित आवहीं, संग सखिनि की भीर ॥३७२॥
वर्ष अठारह कीन्ह मैं, तिन्हि कर सेवा संग ।
रटि सियराम सु नाम मुख, न्हाय लक्ष्मणा गंग ॥३७३॥
सिय प्रेरित तिनते विपुल, पायेउँ भेद सु भाव ।
उपासना धामादि के, सिखयेउँ रहित दुराव ॥३७४॥
मौन साधि निज भवन महँ, बैठेउ अब धरि ध्यान ।
मिथिला शरण सु सन्त पद, सेवत नित सज्ञान ॥३७५॥
तिनहीं केर स्वरूप सो, उत्साही गुणवन्त ।
धर्म शील गुरुदेव सह, सेवत सिय पिय सन्त ॥३७६॥
इनकर परिचय प्रथम मैं, दीन्ह कछुक येहि माहिं ।
यह प्रसङ्ग सु पाय पुनि, लिखेउँ सो अनुचित नाहिं ॥३७७॥
सन्तनि के गुण गण विमल, भाव सु भेद अनूप ।
पुनि पुनि गावत सुनत जो, सो न परहिं भवकूप ॥३७८॥
सिद्ध स्थान समीप अति, सनमुख प्राची ओर ।
श्री सद्गुरु निवास शुचि, तेहि महँ धाम सु मोर ॥३७९॥

१—पूर्व क्रम ।

श्रीसतगुरु श्री सिद्धजी, श्री सिय स्वामिनि केरि।
कृपा भई तब ठाम भल, दीन दशामम हेरि ।।३८०।।
जन्म भूमि सिय केरिं महँ, बिनु सिय कृपा निवास।
सुर गन हू पावत नहीं, विहरहिं जहँ सिय खास ।।३८१।।
गंग लछिमना तट बिमल, भूमि मनोहर राज।
सिय स्वामिनि बिहरहिं जहाँ, नित सँग सखी समाज ।।३८२।।
चहुँदिशि अमराई लसति, अनुपम लता वितान।
मध्य लच्मणा गंग तेहि, उभय ओर चौगान ।।३८३।।
खेलन हित नित महल ते, आवत सिय पिय संग।
जल क्रीड़ादिक केलि बहु, करति सु सहित उमंग ।।३८४।।
तेहि चौगान सु मध्य एक, कुंज करायेउ सीय।
निज निवास हित अनुपम, प्रेरि सखिन के हीय ।।३८५।।
रामप्रिया-सिय सहचरी, दोऊ सत गुरु हेत।
सिय प्रेरित विरचेउ सुभग, मन अनुकूल निकेत ।।३८६।।
श्री सद्गुरु सु निवास यह, नाम धरेउ हिय हेरि।
प्रेमलतादिक सहचरी, बसति तहाँ सिय केरि ।।३८७।।
सिय पिय वारि विहार हित, आवत तब यहि माँहिं।
करि निवास कछु सखिनि सह, पुनि निज महलनि जाहिं ३८८
सिय पिय आवत रहत नित, साक्षात् तेहिं माहिं।
आर्चा विग्रह रूप दोउ, भक्तन को दरसाहिं ।।३८९।।
ब्रह्म परात्पर सतगुरू, पूजा तहँ तिन केरि।
करहिं सभाव सप्रेम नित, प्रेमलतादिक चेरि ।।३९०।।

श्री सतगुरु की करत जो, पूजादिक सब सेव।
तेहि पर सिय पिय सहित सब, रीझत देवी देव ॥३९१॥
चित बित हित ते करत नित, गुरु पूजा जन कोय।
तिन्हें देत निज धाम प्रभु, निश्चय संशय खोय ॥३९२॥
प्रति गुरुवार बिशेष कछु, उत्सव गान बजान।
श्री सतगुरु ढिग करत जो, पावत पद निर्वान ॥३९३॥
सब सुख जो दोउ लोक महँ, चाहहिं सज्जन कोय।
पूजैं तौ सदगुरुहिं नित, सब प्रकार सुख होय ॥३९४॥
भजनानन्द सु बैष्णव, द्विज बंशी जित काम।
गुरु करि सेवत तिनहिं निज, दरश देत सियराम ॥३९५॥
प्रति पूनम गुरु नामते, सन्त सजातिनि संग।
भोज भजन उत्सव करत, मन वच क्रम स उमंग ॥३९६॥
गुरु प्रताप दोउ लोक ते, स्वयम् पूजनिय होय।
गावत वेद पुराण मुनि, गुरु महिमा नहिं गोय ॥३९७॥
गत असाढ़ ज़ो पूर्णिमा, गुरु पूनम सो खास।
तेहि दिन तन मन धन अरपि, पूजन गुरु सहुलास ॥३९८॥
करत सजाती साथ सजि, मंडपगुरु पधराय।
अरपि पदारथ आरती, करत सु गाय बजाय ॥३९९॥
गुरु प्रसाद पावत बहुरि, बैठि सजातिनि माँहिं।
लख चौराशी योनि महँ, ते सज्जन नहिं जाँहिं ॥४००॥
गुरु चरणामृत जूँठ जो, पावत हिय हरषाय।
खर सूकर स्वानादि की, योनि न ते जन जाय ॥४०१॥

लोक अपर परलोक महँ, हितगुरु देव समान ।
भयेउ न है होनेउँ नहीं, भाषत वेद पुराण ॥४०२॥
गुरु तुष्टे सब तुष्टहीं, गुरु रुष्टे सब रुष्ट ।
होत पुष्ट यह बात फुर, समुझहिं सन्त न दुष्ट ॥४०३॥
गुरू करैं सो करि सकैं, मेटन हार न कोय ।
श्री सियरामहुँ काम सब, करत सु गुरु रुख जोय ॥४०४॥
तन मन धन सब दीजिये, गुरुहित निःसन्देह ।
गुरु की सेवा कीजिये, तजि ममता मद गेह ॥४०५॥
श्री सद्‌गुरु की कृपाते, रटत नाम सियराम ।
जियत मोक्ष पद पायेऊँ, प्रेमलता परधाम ॥४०६॥
बास खास सिय धाम महँ, गंग लक्ष्मणा तीर ।
पायेउँ जहँ बहिबो करै, सन्तत नीर समीर ॥४०७॥
शुद्ध सदन भोजन वसन, जल थल परम पवित्र ।
निवसि तहाँ निरखत बिमल, श्री सियराम चरित्र ॥४०८॥
श्रीसद्‌गुरु सुनिवास के, कोट कँगूरनि माँहिं ।
बैठि रटत सियराम मुख, दुख सपनेउ कछु नाँहिं ॥४०९॥
बिनु माँगे भोजन बसन, मिलत अटूट हमेश ।
रटत नाम सद्‌गुरु कृपा, नाशेउ सकल कलेश ॥४१०॥
पूजत श्री गुरुदेव पद, रटत नाम सियराम ।
श्रीसद्‌गुरु सुनिवास महँ, निवसत सुख वशुयाम ॥४११॥
सीता इष्ट सु मोर तेहि, पुरी सुलक्षणा नाम ।
तासु निकट निवसत सदा, रटत नाम सियराम ॥४१२॥

आतम ज्ञाता जीव सब, निवसहिं तेहि पुर माँहिं ।
सियपद कमल विहाय जिन्हि, सपनेउँ पर गति नाँहिं ।।४१३।।
सखी भावना धारि उर, जड़ पुरुषत्व बिहाय ।
सेवहिं सियपद कमल नित, बहु विधि भाव बढ़ाय ।।४१४।।
सिय में स्वामिनि भावना, सिय पिय में पति भाव ।
राखि लड़ावहिं लाड़ नित, तजि छल कपट दुराव ।।४१५।।
यह सुख जानत रसिक जन, गुरुमुख ज्ञानी सन्त ।
निन्दहिं दुर्जन मनमुखी, बकि दुर्वचन अनन्त ।।४१६।।
विषय कीच महँ बेंग सम, परे परे टरराँहिं ।
तिन्हि के वचन न सन्त जन, सुनत गुनत मन माँहिं ।।४१७।।
रबि महँ तिमिर निरूपहीं, दुर्जन अस अविचार ।
सन्तनि बिच अवगुन लखें, प्रभु महँ विषय विकार ।।४१८।।
नाम रूप गुणधाम यश, प्रभु कर पंचम वेष ।
सन्त प्रचारहिं भूमितल, दुर्जन मानहिं द्वेष ।।४१९।।
धर्म प्रचारन सन्त जन, निवसहिं वस्तिनि माँहिं ।
धर्म हीन दुर्जननि ते, देखे नाँहिं सुहाँहिं ।।४२०।।
साधू बस्तिनि महँ बसें, जीवन तारन हेत ।
दुर्जन तजि तिन्हिकेर गुण, हेरत अगुन अचेत ।।४२१।।
भजन करन्ते सन्त जन, रामरूप जग माँहिं ।
हँसि हँसि दुर्जन तुच्छ मति, तिन्हि कहँ ज्ञान सिखाँहिं।।४२२।।
बाबा जी बन में रहैं, वस्तिनि में का काम ।
दुर्जन कहि कहि बचन अस, करत तिन्हैं बदनाम ।।४२३।।

छल बल करि खोजत रहत, छिद्रहिं संतनि बीच।
बिनु कारण उत्पात बहु, करत रहत नित नीच ॥४२४॥
खोजत मलिन अहार जिमि, सूकर गृद्ध सियार।
दुर्जन तिमि ढूँढ़त रहत, सारहु माँहिं असार ॥४२५॥
काम क्रोध मद लोभ रत, जस जिन्हि के उर आँहिं।
जानहिं ते खल हमहिं सम, सकल जीव जग माँहिं ॥४२६॥
साधुनि सन दुर्जन कहत, ये पेट भरुआ लोग।
ढोंग बनाय सु ठगत जग, करत विबिधि रस भोग ॥४२७॥
असली नकली लखत नहिं, साधु असाधु गमार।
बोलत सब ते एक रँग, दुर्जन रहित विचार ॥४२८॥
मलिन हृदय दुर्जननि के, कर्म बचन व्योहार।
सन्तनि ते चीन्हे कहा, ग्रसित मोह मद मार ॥४२९॥
साधु उपद्रव सहत सब, दुष्टनि कृत कटु बैन।
काहुहिं सन झगरत नहीं, रटत नाम सुद दैन ॥४३०॥
सहन शील सुचि संत सँग, खल करि करि उत्पात।
आपहि बैठत हारि उर, सोचि सोचि पछितात ॥४३१॥
इन्धन सम दुर्जन सकल, अगिनि प्रबल उतपात।
जरत रहत तेहि महँ सदा, सपनेहुँ नहिं कुशलात ॥४३२॥
सन्त मेघ सम शील जल, वरपत जहाँ हमेश।
वहाँ अगिनि उत्पात बढ़, करि नहिं सकत प्रवेश ॥४३३॥
दुर्जन बगरे जगत विच, जिमि वक बायस स्वान।
पर निन्दा मल मास सम, खाय जियत अज्ञान ॥४३४॥

भगति भगत भगवन्त के, द्रोही दुर्जन लोग।
रचत रहत बिनु कारण, उत्पाती उद्योग ॥४३५॥
तन मन धन ते बचन ते, जनते जोरि जमात।
प्रभु भगतनि नाशन चहत, दुर्जन करि उतपात ॥४३६॥
भगति भगत भगवान तिहुँ, निष्कामी निर्दोष।
तिन्हि महँ दोष निरूपहीं, दुर्जन खल मल कोप ॥४३७॥
रबि ढिग तम तृण अनल ढिग, सन्तनि के ढिग पाप।
जात नशत बूझत नहीं, दुर्जन प्रबल प्रताप ॥४३८॥
कोटिनि खल मिलि एक सँग, रचैं कदापि प्रपञ्च।
नाम सु जापक जननि तउ, दै न सकैं दुख रञ्च ॥४३९॥
वेष देखि भगवान कर, कंठी तिलक सु छाप।
दुष्टनि अति दुख होत जनु, मरि गये मैया बाप ॥४४०॥
लखि न परत दुर्जननिकर, कवन सुभाव विचित्र।
प्रभु भक्तनि के वेष के, केहि लगि बने कुमित्र ॥४४१॥
पाप ताप हर आन के, भगति वेष प्रभु सन्त।
तिन्हि महँ दोष निरुपि सठ, दुर्जन नर्क परन्त ॥४४२॥
निन्दहिं भक्तिहिं भक्तहीं, वेषहिं प्रभुहिं अचेत।
तेहि लगि यमधरि दुर्जननि, निजपुर अति दुख देत ॥४४३॥
भगति भगत प्रभु वेष बर, चारिहुँ सेवन जोग।
संगति तजि दुर्जननि की, सेवहु सज्जन लोग ॥४४४॥
दुर्जनि के दुर्वचन सुनि, भगत भगति निजरंग।
जीवन जो छोड़त नहीं, कोटि करै कोउ तंग ॥४४५॥

प्रभु रसिकनि की टेक दृढ़, टारि सकै नहिं कोय।
अंगद पग जिमि धरेउ महि, टरेउ न तिल भरि सोय ॥४४६॥
संकर केर पिनाक जिमि, तिमि रसिकन कर भाव।
टरेउ न टारे भूप बहु, बली परा भव पाव ॥४४७॥
बल बुधि विद्या भावना, प्रभु भक्तनि कर पुष्ट।
हारत करि करि बिघ्न बहु, थाह न पावहिं दुष्ट ॥४४८॥
तन मन प्रभुहित अर्पहीं, रसिक बजायसु डंक।
निन्दहिं दुर्जन कोटि किन, तिन्हि उर रञ्चन शंक ॥४४९॥
ज्यों ज्यों निन्दहिं निन्दकी, त्यों त्यों रसिकनि भाव।
चढ़त बढ़त कञ्चन यथा, मोल लगे बहु ताव ॥४५०॥
आतम पायेउ राम पति, सिय स्वामिनि सुखदाय।
तिनहीं के रँग रँगि रही, निन्दा सुने बलाय ॥४५१॥
रसिक आतमा रँगि रही, सिय पिय रंग अभंग।
टरै न सो कोउ करै किन, कोटि विघ्न एक संग ॥४५२॥
रसिक आतमा रस भरी, धरी भगति की टेक।
बरी वासना रिस भरी, टरी बलाय अनेक ॥४५३॥
भरी लगी सियराम की, खरी ढरी जिय जोय।
करी सुखी विपदा हरी, तरी आत्म भव सोय ॥४५४॥
पार गई भव आतमा, मिले युगल सरकार।
केवलि तनु संसार महँ, करै कवन तकरार ॥४५५॥
प्रभु विषयिक विषई भई, तजि जग विषय विकार।
निन्दा अस्तुति समुझि सम, रटनि नाम इकतार ॥४५६॥

हानि लाभ दुख सुख सरिस, तथा मान अपमान।
रसिक आतमा इष्ट सुख, पगी न बहिरँग भान ॥४५७॥
नयननि महँ सियपिय वसे, उर सतगुरु सुख धाम।
गुरु प्रभु महिमा मन बसी, मुख सियराम सु नाम ॥४५८॥
भाल तिलक छापा सहित, भुजनि वसे धनुवान।
कंठ कंठिका माल बर, तारक मंत्र सु कान ॥४५९॥
रग रग अस्थी चाम मधि, इष्ट प्रसाद सु सार।
रोंम रोंम शृंगार रस, बसेउ प्रमाणनि पार ॥४६०॥
अन्तरङ्ग बहिरङ्ग अब, रहेउ न तिल भरि ठाम।
धरे कहाँ पर आतमा, दूसर बस्तु निकाम ॥४६१॥
निन्दा अस्तुति कछु करौ, कोउ किन सुने न कान।
माते नाते त्यागि सब, रसिक इष्ट सुख ध्यान ॥४६२॥
बड़े घरन की भामिनीं, होत सु लज्जामान।
काहुहिं ते झगरै नहीं, तिमि प्रभु रसिक सुजान ॥४६३॥
कुलवन्ती निज भवन में, बसहिं न अन्तै जाँहिं।
पति रूख लखि कारज करहीं, धरि दृढ़ ब्रत मन माँहिं ॥४६४॥
इष्ट धाम महँ रसिक तिमि, निवसहिं करि दृढ़ नेम।
सेवहिं गुरु प्रभु चरणनित, रटि सियराम सप्रेम ॥४६५॥
श्री सियराम उपासकनि, रसिकनि और विशेष।
मिथिला सम सुखप्रद न कोउ, तिरहुत सम न सुदेश ॥४६६॥
सीता इष्ट सु देवता, तिन्हिकर धाम ललाम।
मिथिला श्री सीतामढ़ी, बसहिं रसिक रटि नाम ॥४६७॥

परम सुहावन पावन, देश सु रहित कलेश।
तिरहुत तेहि महँ रसिक जन, विचरहिं सुखी हमेश ॥४६८॥
देश देश बासीन कर, जानकि इष्ट सु एक।
इष्टदेश तेहि हेत लखि, तिरहुत कहँ सविबेक ॥४६९॥
देशधाम कोउ इष्टकर, असन कतहुँ महि माँहिं।
कीन परिजटन बहुत मैं, पै कहुँ देखेउँ नाँहिं ॥४७०॥
परिपुरण जल अन्नकरि, सर सु बाग फल कन्द।
तिरहुत सम नाहिन कहूँ, रसिकन प्रद आनन्द ॥४७१॥
साधू सेवी भक्त बहु, सन्तनि के अस्थान।
तिरहुत सम नहिं लखेउँ कहुँ, आस्तिक जन विद्वान ॥४७२॥
सरिता चौवीश वहहिं बर, बरणों तिन्हि के नाम।
पढ़त जिन्हें पुरिहहिं सकल, जीवनि के मन काम ॥४७३॥
कौशिकि कमला पावनी, विमला जमुनी जानि।
विल्ववती सु जलाधिका, करै सकल अघ हानि ॥४७४॥
बनघोषा धुम्रावती, अकुशी रातो गंग।
व्याघ्रवती अरु गेरुका, बिरजा बहति अभंग ॥४७५॥
दुग्धवती श्री मान्डवी, अधोउबारा नाम।
जमुरा अरु श्री लच्मणा, बहति जानकी धाम ॥४७६॥
बाघमती श्री गंडकी, सालिग्रामी धार।
जिवछी पथरा पर्वता, मिथिला तीर्थ अपार ॥४७७॥
गुप्त प्रगट सरि सर विपुल, लखि मन जात लुभाय।
विमल नीर संकुल कमल, प्रभु रसिकन सुखदाय ॥४७८॥

सेवत जिन्हि सियराम रटि, मिलत तिन्हें सियलाल।
नाशें आवा गमन दुख, क्षण में करैं निहाल ॥४७९॥
त्रेता के निर्मित सुभग, विमल वहत्तर ताल।
तिन्हिकर सुखमा लखि थके, बन्धु सहित रघुलाल ॥४८०॥
श्री सियराम बिहार हित, कुंड विहार अनूप।
विरचेउ श्री मिथिलेश जो, सब कुंडनि महँ भूप ॥४८१॥
चहुँदिशि महल सु घाट वर, अमराई विच कुंड।
दर्शन ते सुख होत अति, नशत अघनि के झुंड ॥४८२॥
रशिक सन्त सियरामपद, सेवहिं रटि सियराम।
निवसहिं कुंड बिहार तट, श्री मिथिलापुर धाम ॥४८३॥
त्रेता के ही पंच पुनि, कूप सुमिथिला माँहिं।
राजत पाप विनाशक, सब कोउ जानत नाहिं ॥४८४॥
जागवल्क्य ते जनक जहँ, सुनेउ कथा मुनि साथ।
ज्ञान कूप तेहि नाम बर, भरेउ अमीसम पाथ ॥४८५॥
चौदह विद्या जानकी, सखिनि सहित तेहि ठाम।
पढ़ीं तहाँ निर्मायेऊ, विद्याकूप ललाम ॥४८६॥
इन्ह कूपन कर नीर जो, पियें रटें सियराम।
द्वादश वर्ष सुनेमकरि, पावें सब मन काम ॥४८७॥
नदी कूप सर तटनि बसि, श्री सियराम सुनाम।
रटें खूब द्वादश बरष, अवसि मिलैं सियराम ॥४८८॥
मिथिला के सरि सरनि तट, सन्तनि भोजन दान।
देइ लहहिं सो कोटि गुण, फल कह पद्म पुराण ॥४८९॥

दुग्धवती सरितट सु बट, नाम रसिक तहँ सन्त ।
निबसहिं निशिदिन धाम तजि, आवत जात न अन्त ॥४६०॥
माँगि खात माधूकरी, रटत सदा सियराम ।
तिन्हि की सेवा संग करि, जन पावहिं प्रभु धाम ॥४६१॥
कोटिन साधन सुकृत फल, पावें सो अनयास ।
नाम जापकनि की करैं, सेवा जो सहुलाज ॥४६२॥
सेवन चाहहिं भगत जो, नाम सु जापक सन्त ।
परिकर्मा श्री धाम की, करैं लहैं सुख अन्त ॥४६३॥
फागुन परिवा सुक्ल कहँ, मिथिला की हरसाल ।
घूमति तेरह दिवस जेहि, करि जन होत निहाल ॥४६४॥
श्री सियराम सु नामके, रसिक अनन्य सु सन्त ।
सिमिटि जुटत तेहि महँ विपुल, बड़े बड़े बुधिवन्त ॥४६५॥
करत नाम धुनि दिवस निशि, नचि नचि गाय बजाय ।
तिन्हिकी सेवा संग ते, जन्म मरन विनशाय ॥४६६॥
नाम जापकनि केरि एक, सेवा सब सुख दाय ।
पुनि परिकर्मा धामकी, देति अघौघ नशाय ॥४६७॥
जातन जानहिं दिवस निशि, भजन करत सब कोय ।
नृत्य गान लीला कथा, अद्भुत आनँद होय ॥४६८॥
ऋषि निवास तीरथ सकल, मिलत जात मग माँहिं ।
भूमंडल महँ सुखद अस, परिकर्मा कहुँ नाँहिं ॥४६९॥
धाम न देश सुतीर्थ महि, मिथिला सम सुखदाय ।
भोजन वासन नारिनर, कोमल सरल सुभाय ॥५००॥

रसिक सन्त परमारथी, ज्ञानी भजनानन्द।
ठाम ठाम निवसहिं विपुल, बीतराग निर्द्वन्द ॥५०१॥
सुख चाहहिं दोउ लोक जो, भाविक भजनानन्द।
निवसें तिरहुत देश सो, रटें नाम सुख कन्द ॥५०२॥
षट सम्पति शरणागती, अरु उपासना भेद।
निज पर रूप अनूप जेहि, करत निरूपन वेद ॥५०३॥
अर्थ सु पंचक रहस त्रय, तत्वत्रय मंत्रार्थ।
सीखै गुरु सन प्रथम सब, कहा स्वार्थ परमार्थ ॥५०४॥
नवधा दश प्रेमा परा, भगति भजन के भाव।
पंच रसनि के भेद बर, गुरु सन लेइ सचाव ॥५०५॥
निराकार साकार पुनि, मुक्ति सु पंच प्रकार।
समुझै परिकर चाँरकर, भेद सु सहित बिचार ॥५०६॥
सवा अस्टसुयाम की, नाम रटन की रीति।
विघ्न निवारण विधि बहुरि, सीखै अवसि सप्रीति ॥५०७॥
सन्त असन्तनि केरि गुण, परम्परा गुरु केरि।
सीखि रटै सियराम पुनि, जग भग ते मुख फेरि ॥५०८॥
सेवा में बत्तीस अघ, दश सु नाम अपराध।
तजै सीखि गुरुदेव सन, ये बड़ बिघ्न असाध ॥५०९॥
बिनु जाने ये भेद सब, फुरत न भजन प्रभाव।
मनमुख भजनी करत बहु, भजन न प्रभु पद पाव ॥५१०॥
प्रथम गुरू सन लेइ पढ़ि, जिज्ञासू सब भेद।
बसि मिथिलापुर नाम तब, रटै अखंड अखेद ॥५११॥

भजन पंथ अति झीन तर, मनमुख निवहत नाँहिं।
चढ़ि चढ़ि गिरि गिरि परत सो, बिनुगुरु चलि न सकाँहिं॥५१२॥
येहि पथ चलै न चातुरी, बल बिद्या धन जोर।
सिद्धाई बकतब्यता, कर्म सुधर्म करोर॥५१३॥
सतगुरु मिले सहायक, सिष्य सु श्रद्धामान।
सिखवें सीखै भाव सब, पावै तब भगवान॥५१४॥
बृहद् उपासन रहस मम, भक्त माल पढ़ि लेइ।
नाम प्रताप प्रकाश पुनि, रामायण चित देइ॥५१५॥
समुझै पारस भाग पुनि, आचार्य्यनि सिद्धान्त।
मिलै भजन कर स्वाद तब, नाश होय भव भ्रान्त॥५१६॥
पढ़ि सुनिये सब विषय, उर जाय न कहुँ घबराय।
रटें जाय सियराम मुख, प्रभु सब लेइँ बनाय॥५१७॥
तिलक छाप कंठी गरे, संसकार दृढ़ धारि।
रटै नाम सियराम पुनि, खूब प्रपंच बिसारि॥५१८॥
बनत बनत बनि जायगी, रटत रटत सियराम।
प्रेमलता पायेउ परम, नामहिं रटि बिश्राम॥५१९॥
मोसम मूरख मन्दमति, अविचारी अज्ञान।
नाहिंन कोउ त्रयलोक महँ, निरत मोह मद मान॥५२०॥
रटत रटत सियराम सो, सतगुरु कृपा सु पाय।
पायेउँ परमानन्द अति, जो मुख बरणि न जाय॥५२१॥
सियपुर पायेउँ बास बर, गंग लक्ष्मण तीर।
सद्गुरु कृपा सु नाम रटि, नाश भई सब पीर॥५२२॥

श्री पुर मिथिला धाम बसि, बिचरि सु तिरहुत देश ।
पायेउँ अति सुख नाम रटि, नाशेउ सकल कलेश ॥५२३॥
भजनानन्दनि प्रति विनय, जे गुरुमुख सज्ञान ।
उभय लोक सुख चहहु जो, सब प्रकार कल्यान ॥५२४॥
सकल आश विश्वास तजि, सजि सनेह सियराम ।
रटहु विचरि तिरहुत मही, बसि श्री मिथिला धाम ॥५२५॥
तपो भूमि मिथिलेश की, पुनि सिय प्रगटी आय ।
सिव धनु भंजेउ राम पुनि, ब्याहेउ चारौ भाय ॥५२६॥
जीतेउ जहँ श्रीरामने, भृगुपति क्रोध स्वरूप ।
काम जनक गौतम ऋषी, ध्रुव करि तप सु अनूप ॥५२७॥
लोभ मोह मद मत्सर, जीतेउ सब शुकदेव ।
मिथिला महि महँ भजन करि, लहेउ न को प्रभु भेव ॥५२८॥
नव योगेश्वर सप्त ऋषि, सनकादिक मुनि ब्यास ।
पारासर बलमीक जहँ, भजन करेउ करि बास ॥५२९॥
ज्ञानी भक्त बिरक्ति अति, विद्यानिधि मिथिलेश ।
जपी तपी योगश दृढ़, तिन्हिकर तिरहुत देश ॥५३०॥
श्री सियराम उपासकनि, हित अस देश न धाम ।
भजन करन निर्विघ्न कहुँ, सुख सिधि प्रद अभिराम ॥५३१॥
जिन्हि पर श्रीसियरामकी, हुइहैं कृपा अपार ।
मोर वचन सोइ मानि हैं, सज्जन जन सविचार ॥५३२॥
हितकी भाखेउँ बात सब, सत्यसार सिद्धान्त ।
मनिहहिं सज्जन गुरुमुखी, जिन्हिकर उर सुचि सान्त ॥५३३॥

हँसिहहिं खल पढ़ि मन मुखी, विषयी भजन बिहीन ।
अबिचारी प्रभु विमुख जो, पाप प्रपञ्च प्रवीन ॥५३४॥
तिन्हि के हँसे न हानि कछु, रीझहिं जो शुचि सन्त ।
सन्तन के रीझइ द्रवत, जीवनि पर सियकन्त ॥५३५॥
आदर करैं सु सन्त जेहिं, तासु निरादर जौन ।
करै परै भवकूप महँ, ताहि उबारै कौन ॥५३६॥
सन्तनि के सियराम प्रिय, खलनि कपट छल काम ।
सन्त जायँ साकेत पुर, खल गण यम के धाम ॥५३७॥
सन्त गहहिं गुण छीर तम, खल गण अवगुन नीर ।
पर सुख लखि हरषहिं सुजन, खल गण लखि पर पीर ॥५३८॥
विगरी सन्त बनावहीं, बनी विगारहिं दुष्ट ।
सन्त सन्त लखि हरषहीं, दुष्ट होहिं लखि रुष्ट ॥५३९॥
मैं दोउनि की बीनती, करौं उभय करजोर ।
विगरी सकल बनाइहैं, सन्त असन्तहु मोर ॥५४०॥
दोउनि ते सम्बन्ध मम, तेहि लगि करौं निहोर ।
अपनैती लखि ग्रन्थ यह, अपनइहैं दोउ मोर ॥५४१॥
सन्तनि कर वर वेष जो, कंठी तिलक सु छाप ।
धारेउ तन पर बाहिरी, करौं नाम मुख जाप ॥५४२॥
दुष्टनि के अवगुन बिपुल, बसत मोर मन माँहिं ।
तेहि लगि दोउनि ते सु मम, नातौ कमती नाँहिं ॥५४३॥
सन्त द्रवत लखि बाहिरी, वेष सरल चित होत ।
खलनि अगुन प्रिय विपुल सोउ, ममउर बसहिं निसोत ॥५४४॥

...शोध संस्थान ... सेवा ट्रस्ट अयोध्या

आदरिहहिं मम ग्रन्थ सब, पढ़ि सुनि सन्त असन्त ।
दोनउँ आपन जानि मोहिं, निर्बुधिया बुधिवन्त ।।५४५।।
ग्रन्थहिं करौं समाप्त अब, पुनि पुनि सबहिं निहोरि ।
पढ़ि सुनि साधु असाधु दोउ, समुझि सुधारहिं खोरि ।।५४६।।
गङ्ग लच्छमणा तट निकट, श्री सदगुरु सु निवास ।
सीतामढ़ी प्रसिद्ध जग, जन्म भूमि सिय खास ।।५४७।।
विरचेउ तहँ यह ग्रंथ रुचि, श्री सियराम सुनाम ।
कृपा पाय गुरु देव की, पूरे सब मन काम ।।५४८।।
सम्बत् उनइस सत सुभग, साल नवासी केरि ।
असित पच्छ सावन सु तिथि, अष्टमि मंगल हेरि ।।५४९।।
प्रेमलता लिखि ग्रंथ यह, गुरुहिं समर्पण कीन्ह ।
नाम रटन कर हरषि मोहिं, आशिर्वाद सु दीन्ह ।।५५०।।
गुरु समान हित कोउ नहीं, हेतु रहित त्रय लोक ।
जड़ जीवन अपनाय गुरु, देत बनाय विशोक ।।५५१।।
ग्रंथ सत्य सिद्धान्त यह, पढ़ि सुनि गुनि उर धारि ।
सुख पैहैं सज्जन सकल, श्री सियराम उचारि ।।५५२।।
जो छपवाय प्रचारहीं, तिन्हिपर श्री सियराम ।
रीझहिं बिनु जप तप किये, कृपा सिन्धु सुख धाम ।।५५३।।
मोसे खल मल राशि जिन्हि, अपनायेउ तजि दोष ।
कतहुँ न श्री सियराम से, साहिब करुणा कोष ।।५५४।।
अधम आलसी हेरि मोहिं, निज सियराम सुनाम ।
रटन दीन्ह उद्धार हित, सुख निधान सियराम ।।५५५।।

❁ भूमिका ❁

❁ दोहा ❁

श्री प्रेमलता कृत विनय यह, सिय स्वामिनि सुनि लीन ।
परसि शीश कर कंज निज, नाम रटन वर दीन ॥ १ ॥
प्रात साँझ यह पाठ जन, जे करिहैं मनलाय ।
सिय स्वामिनि तेहि रीझि हठि, अवसि लेहिं अपनाय ॥ २ ॥
कंठ करे बाँचे सुनैं, गुणें अर्थ करि ख्याल ।
रटना श्री सियराम की, तिनहिं देहिं सियलाल ॥ ३ ॥

आपका—कृपापात्र

सिया रघुनाथ शरण

श्रीसद्गुर कृपा प्रकाश ग्रंथान्तर

॥ अथ ॥

श्रीजानकीजन्मस्तुति

॥ छन्द ॥

भइ प्रगट कुमारी भूमि विदारी जन हितकारी भयहारी।
अतुलित छबि भारी मुनिमन हारी जनक दुलारी सुकुमारी॥
सुन्दर सिंहासन तेहि पर आसन कोटि हुताशन दुतिकारी।
सिरछत्र बिराजै सखिगण भ्राजै निज २ काजै कर धारी॥१॥
सुर सिद्ध सुजाना हनहिं निशाना चढ़े विमाना समुदाई।
बरषहिं बहुफूला मंगल मूला अनुकूला सिय गुणगाई॥
देखहिं सब ठाढ़े लोचन गाढ़े सुख बाढ़े उर अधिकाई।
अस्तुति मुनि करहीं आनन्द भरहीं पाँयँनि परहीं हरषाई॥२॥
ऋषि नारद आये नाम सुनाये सुनि सुख पाये नृप ज्ञानी।
सीता अस नामा पूरण कामा सब सुख धामा गुण खानी॥
सियसन मुनिराई विनय सुनाई समय सुहाई मृदु बानी।
लालनि तनु लीजै चरित सुकीजै यह सुख दीजै नृप रानी॥३॥
सुनि मुनिवर बानी सिय मुशिकानी लीला ठानी सुखदाई।
सोवत जनु जागी रोवन लागी नृप बड़ भागी उर लाई॥
दम्पति अनुरागेउ प्रेमसु पागेउ तेहिं सुख लागेउ मन लाई।
अस्तुति सियकेरी प्रेमलतेरी बरणि कुचेरी सिरनाई॥४॥

दोहा—निज इच्छा मखभूमिते, प्रगट भईं सिय आय।
चरित किये पावन परम, बरधनि मोद निकाय ॥१॥

जय जय सिय प्यारी जय सुकुमारी जय पतिवर्त सु गोरी।
जय जनक दुलारी जन हितकारी जय शशिवदनि किशोरी॥१॥
जय जय मृगनैनी जय पिकबैनी जय सुखरासि पुनीता।
जय जय गुण खानी बेद बखानी जय जग जननी सीता ॥२॥
जय सब घट बासिनि विश्वविलासिनि जय पालनि लयकारी।
जय अधम उधारिनि भवभय हारिनि जय श्रीअवनिकुमारी॥३॥
जय जय अघमोचनि पंकज लोचनि जय सिय स्वामिनि मेरी।
परमानँद रूपा रूप अनूपा नाम रटन वर देरी ॥४॥
जय चम्पक बरणी मुनिमन हरणी जय मृदु हँसनि सुबैनी।
लीला बपुधारिनि चरितसु कारिनी संभ्रृंति हरनि सुखैनी ॥५॥
मिथिलाधिप कन्या त्रिभुवन धन्या वर दायक बर दैनी।
शरणागत पालक खल दल घालक परम स्वतंत्र सुचैनी ॥६॥
जै आदि भवानी बेद न जानी महिमा अगम अपारी।
सेवति सुर बामा चरण ललामा सादर बदन निहारी ॥७॥
नख शिख भृङ्गारी अलिनि मझारी प्रमुदित करति विलाशा।
हँसि वारक ताकी प्रेमलताकी स्वामिनि पुरवनि आशा ॥८॥

सोरठा—सियजू पद सिर नाइ, बार बार बलि बलि गई।
नाम रटन बर पाइ, प्रेमलता प्रमुदित भई ॥१॥

छन्द—जय जानकी जग जननि स्वामिनि प्रणत जन सुख दायनी।
गुण रूप शोभा खानि सीताराम पिय मन भायनी ॥१॥

जय जनक जाया जननि काया शरण आये स्वामिनी ।
अपराध छमि सिय पालु देवि कृपालु रामसु भामिनी ॥२॥
कलिकाल खल कामादि प्रेरिसु जननि मन ब्याकुल किये ।
छल कपट मद मानादि शरहति पाहि सिय बेधे हिये ॥३॥
हम जीव जड़ अग्यान बश पद कमल भूले मातुरी ।
तेहिं लागि दारुण दुख सहे तब शरण अब तजि चातुरी ॥४॥
जय जयति आनन्द कन्दनी यमलोक भव भय टारिनी ।
जय जयति जय भुवनेश्वरी जय जयति स्वबश बिहारिनी ॥५॥
ब्रह्मादि सुर सनकादि मुनि तब चरण पंकज ध्यावहीं ।
श्रुति शेष सारद शिव सुनारद बिमल गुणगण गावहीं ॥६॥
जय पतित पावन भूमिजा श्रीराम रूप विलासिनी ।
जय चलनि बोलनि हँसनि मन्द सुमन्द मन पर काशिनी ॥७॥
सिय राम नाम पियूष जेहि बिधि पियउँ सोइ कछु कीजिये ।
मन बचन कर्म बिकार हरि सियलाल शरण सुदीजिये ॥८॥

दोहा—श्री सिय स्वामिनि नाम बिनु, जे जन सुमिरहिं राम ।
भुक्ति मुक्ति सो पावहीं, लहहिं न भेद ललाम ॥१॥

छन्द—जय जानकी सुख कन्द करुणा भवन शोक प्रहारिनी ।
सुर संत हित होइ प्रगट लीला करहु मंगल कारनी ॥
जय राम प्रिय सिय भूमिजा संसार सागर तारिनी ।
हँसि हेरि वारक चूक छमि मम कंज कर बर धारिनी ॥१॥
गंधर्व किन्नर नाग मुनि तव चरण पंकज ध्यावहीं ।
सेवहिं सदा सुर शक्ति सादर मुदित अति सुख पावहीं ॥

श्रुति शेष शिव विधि वानि नारद विमल गुणगण गावहीं ।
जो सुनत समुझत गुनत गतिप्रद सकल कलुष नशावहीं ॥२॥
तव प्रबल माया वश चराचर सभय नावत भालहीं ।
विधि करहिं जगहरि भरहिं भयवश शंभुबिनु श्रम घालहीं ॥
दिशिपाल काल कराल तव डर डरत आयसु पालहीं ।
निज रूप गुण बलकियेउ बरबश स्ववश दशरथ लालहीं ॥३॥
सियनाम पूरण काम सुमिरत देत अभिमत फल सही ।
जड़ यमन कोलकिरात खल जेहि सेइ अनुपम गति लही ॥
रटि भाग भाजन होत पामर नाम गुण सकु को कही ।
यह जानि सिय पद कंज सादर प्रेमलतिका गहि रही ॥४॥

दोहा—सुनि सिय महिमा नाम की, प्रमुदित मन मुसिकान ।
प्रेमलतहिं हँसि हेरि तब, दीन अभय बर दान ॥ १ ॥

सोरठा—जब लगि रटत न नाम, तब लगि सुख सपनेउँ नहीं ।
मन न लहै विश्राम, प्रेमलता अवलम्ब विनु ॥ १ ॥

इति श्री जयसियराम नाम प्रचारक श्रीवैष्णवधर्मावलम्बी परमहंस श्री १०८ श्री सियालाल शरण जी महाराज उपनाम श्री प्रेमलता जू कृत श्रीजानकी स्तुति

समाप्त शुभम्

—❀—

जयसियराम जयजयसियराम जयसियराम जयजयसियराम
जयसियराम जयजयसियराम जयसियराम जयजयसियराम
जयजयसीताराम

॥ अथ किञ्चित ॥

श्री प्रेमलता चरितामृत

सिया रघुनाथ शरण कृत

॥ छंद मंजु ॥

श्री सर्वेश्वर राम सच्चिदानन्द सियाबर परधामी ।
स्वार्थ रहित निज अति प्रिय परिकर प्रगटायेउ जग निष्कामी ।।
मीत जक्त परहित रत सादर आदर दानी अभिरामी ।
इकसत आठग्रंथ रचिराखिन जेहि लखि उधरहिं नरबामी ।। १ ।।
श्रीसतगुरु पदकमल अमलउर ध्याय सदा सुख लहते हैं ।
सिय रघुनाथ नाम गुण तजि मुख अवर बात नहीं कहते हैं ।।
यार प्यार सरकार दिवस निशि पगे अगे ही रहते हैं ।
लाखनि जीव किये प्रभु सन्मुख करत करहिं अघ दहते हैं ।। २ ।।
ललकि ललकि सियराम उचारहिं जग जड़ जीव उधारन हैं ।
शरल स्वभाव चराचर सुख प्रद दम्भ कपट मद मारन हैं ।।
रसिकराज रसराज उपासक खल त्रासक अघ टारन हैं ।
नर इव चरित करत विधिनाना जो कारण के कारण हैं ।। ३ ।।
जीव पीव पद विमुख जक्त जे अज्ञ अलायक अभिमानी ।
महा मन्त्र सियराम नाम जेहि रटि रटाय तारहिं प्राणी ।।
हाथ कमण्डल टोप शीश अँगगुदरी अलफी मुददानी ।
रामानन्दी ठाट ठाटि महि बिचरहिं ह्वैमन मस्तानी ।। ४ ।।

जय जय श्री सियलाल शरण महराजसु सतगुरु मेरे हैं ।
कीन अमित उपकार जु मोपर कहत न बने बड़ेरे हैं ।।
जगत जलधि बूड़त लखि काढ़ेउ राखिलीन निज नेरे हैं ।
यह विचारि अलि प्रेम मंजरी गहेउ चरण तिन्ह केरे हैं ।।५।।

सोरठा—श्री स्वामी सियलाल, शरण हरण दुख द्वन्दभव ।
लखि प्रगटेउ कलिकाल, नाम रटन उपदेश हित ।।१।।

दोहा—परम शक्ति अहलादिनी, सिय स्वामिनिजू केरि ।
मुग्ध सहचरी एक रस, दिव्य गुणन की ढेरि ।। १ ।।
अवध बनारस जनकपुर, राम नगर के बीच ।
रटि रटाय सियराम यह, नाम हरहिं अघकीच ।।२।।
अवलोकहिं झूलन अवध, रटहिं बनारस नाम ।
संकटमोचन केर ढिग, पावहिं सब मन काम ।।३।।
सिय बिबाह उत्सव लखहिं, परिकर्मा सुख कन्द ।
विचरहिं मिथिला नाम रटि, देहिं जनन आनन्द ।।४।।
लखहिं राम लीला ललित, राम नगर करि नेम ।
जय जय जय सियराम यह, रटहिं मंजरी प्रेम ।।५।।

जय सियराम जय जय सियराम जय सियराम जय जय सियराम

इति श्री प्रेमलता चरितामृत सिया रघुनाथ शरण कृत

समाप्त शुभम्

॥ अथ ॥

श्रीजानकी जन्म कव्वाली

॥ १ ॥

जै जै जानकी जक्त अधार, अद्भुत रूप दिखाने वाली॥टेक॥
प्रगटीं मिथिला भूमि मझार, हुतासन कोटिन तेज अपार ।
सिंहासन परिकर सहित उदार, छत्र शिर चमर डुलानेवाली॥ १॥

छणमें बैभव अमित दुराय, रोवन लगीं गिल्हाय गिल्हाय ।
दम्पति झट लिये गोद उठाय, सुनैना मोद दिलाने वाली ॥ २॥

दरश हित नारदमुनि तहँ आय, जनक नृप देखि उठे हरषाय ।
अम्बहँसि ललि हिंलाय दिखलाय, पूछि गुणनाम धरानेवाली॥ ३॥

सुनो नृप सीता इन्हके नाम, यही हैं आदि शक्ति छवि धाम ।
इकरिहैं पूरण तव मन काम, परम प्रभु आनि मिलाने वाली॥ ४॥

विश्वामित्र मुनीके संग, आइ प्रभु शिवधनु करिहैं भंग ।
करहिं खल राजन को मद भंग, सिया जैमाल डारने वाली ॥ ५॥

धनुष धुनि सुनि भृगुपति अइहैं, देखि बल निजधनु दैजइहैं।
'मंजरी' प्रेम सबी कहिहैं, बजै अब आनंदकी ताली ॥ ६ ॥

॥ १ ॥

महर्षि वाल्मीकि शोध संस्थान
15465
अयोध्या
श्री मोहनराम दास छावनी सेवा ट्रस्ट

परमहंस श्री सियालालशरणजी महाराज
उपनाम 'श्री प्रेमलताजू' कृत
पुस्तकों की सूची।

श्री बृहद् उपासना रहस्य
श्री प्रेमलता पदावली
श्री सार सिद्धान्त प्रकाश
श्री उपासना पंच रत्न
श्री प्रेमलता बाराखरी
श्री जानकी जन्म स्तुति
श्री सीताराम रहस्य दर्पण
श्री नाम रहस्य त्रयी

इत्यादि पुस्तकें मिलने का पता—

संकट मोचन श्रीहनूमान मन्दिर

पो०—लंका, बनारस।

मुद्रक—गौरीशंकर प्रेस, मध्यमेश्वर, बनारस